गुरु-शिष्य-सत्सङ्ग।

वा

बङ्गला "स्वामी-शिष्य-सम्वाद" का

हिन्दी अनुवाद।

पूर्व्व काण्ड।

अनुवादक—

श्रीरामकृष्ण शरण।
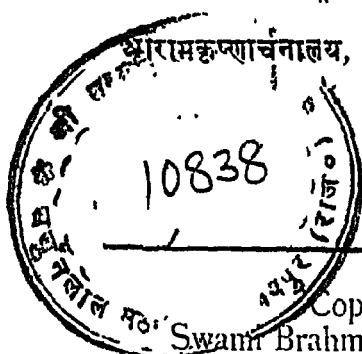
मूल्य ।।।) आना.

अनुवादक की भूमिका।

शिक्षित समाजमें विरलेही मनुष्य ऐसे होंगे जो श्रीरामकृष्ण परमहंसके प्रियशिष्य विश्वविजयी स्वनामधन्य श्रीस्वामी विवेकानन्दजीके नामसे परिचित न हों। समस्त सभ्य संसार ही आज उनके ज्योतिर्मय परोपकारप्रचुर सात्विक जीवनके प्रभावसे मुखरित है। परन्तु देश, समाज आचार, व्यवहार, नीति, धर्म प्रभृति विषयोंमें उनके विचारोंको जाननेका सुअवसर सर्वसाधारणको अभी नहीं मिला। लोकचक्षुसे अन्तर्हित रहकर वे किस प्रकारके ऊंचे भावोंसे सदा समय व्यतीत करते थे, कैसा सम्मान अपने गुरुभाइयोंका करते थे, और अपने शिष्योंको किस प्रकारकी शिक्षा व दीक्षा प्रदान करते थे-ऐसी अनेक बातोंसे तो सर्वसाधारण विशेषकर अनभिज्ञ हैं।

इस प्रकारके कुछ सिद्धान्तोंसे जनसाधारणको परिचित करनेके लिये स्वामीजीके शिष्य श्रीयुत शरच्चन्द्रने समय समय पर स्वामीजीके साथ हुए वार्तालापको लिपिबद्ध करके "स्वामीशिष्यसंवाद" नामक एक पुस्तक रचकर बंगलाभाषियोंका बड़ाही उपकार किया। बंगसमाजमें इस पुस्तकका इतना आदर हुआ कि थोड़ेही दिनोंमें दूसरा संस्करण और सर्वसाधारणके हितार्थ एक सुलभसंस्करण भी छपवाना पड़ा। परन्तु बंगदेशके बाहर, हिन्दीभाषानुरागियोंमें भी बहुत लोग हैं जो स्वामीजीके प्रत्येक कथनका बड़ा आदर करते हैं, और उनके शिक्षामृतपान करनेके लिये

लोलुप रहते हैं। इन महानुभाव सज्जनोंकी सेवार्थ "स्वामीशिष्यसंवाद" का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाता है। यदि इस अनुवादसे ऐसे एक सज्जनकी भी अभिलाषा पूर्ण हुई तो मैं अपना यह परिश्रम सफल समझूंगा।

पाठकोंके सुभीताके लिये एक परिशिष्टभी पुस्तकके अन्तमें देदिया गया है, जिसमें संस्कृतपदोंकी व्याख्या, स्वामीजीके रचे हुये दो एक स्तोत्रादि और कई एक गान सन्निवेशित किये गये हैं।

एतद्द्वारा, सर्वसाधारणको यहभी विदित करदेना असंगत न होगा कि इससंस्करणका समस्त लाभांश "बनारस रामकृष्ण अद्वैताश्रम" और मेरठस्थ "श्रीरामकृष्ण अर्चनालय" की सेवामें व्ययित होगा, इसमें मेरा अणुमात्र भी स्वार्थ नहीं है।

अन्तमें उन सज्जनोंके प्रति सहर्ष हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि जिन्होंने इस अनुवादको मेरी त्रुटिपूर्ण भाषाको संशोधित करनेकी कृपाकी है। मेरा विशेष धन्यवाद मेरे प्रिय शिष्य श्रीमान् मुरारिशरण बी. ए. को है जिन्होंने अपनी कुछ कार्यक्षति भी स्वीकार करके बड़े परिश्रमसे इसका पुनःसंशोधन किया और "प्रूफ़" प्रभृति की देखभाल की।

मेरठ,
रामकृष्णार्चनालय।
जून १९१९ — अनुवादक—

सूचीपत्र ।

प्रथम वल्ली ।

द्वितीय वल्ली ।

तृतीय वल्ली ।

चतुर्थ वल्ली ।

पञ्चम वल्ली ।

षष्ठ वल्ली।

सप्तम वल्ली।

अष्टम वल्ली।

एकादश वल्ली।

द्वादश वल्ली।

स्वामी विवेकानन्द ।

प्रथम वल्ली ।

प्रथम दर्शन ।

—:*0*:—

स्थान—कलकत्ता, प्रियनाथजीका भवन, बागबाज़ार।
वर्ष—१८९७ खृष्टाब्द ।

विषय—स्वामीजीके साथ शिष्यका प्रथम परिचय—'मिरर' सम्पादक श्री नरेन्द्रनाथजीके साथ वार्त्तालाप—इंग्लैण्ड और अमेरिकाकी तुलना पर विचार—पाश्चात्यमें भारतवासियोंके धर्म्म-प्रचारका भविष्यत् फल—भारतका कल्याण धर्म्ममें या राजनैतिक चर्चामें—गोरक्षा-प्रचारकके साथ भेंट—मनुष्यकी रक्षा करना पहिला कर्त्तव्य।

तीन चार दिन हुए कि स्वामीजी महाराज प्रथम बार विलायतसे लौट कर कलकत्ता नगरमें पधारे हैं। बहुत दिनों पीछे आपके पुण्यदर्शन होनेसे रामकृष्णभक्तगण बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। उनमेंसे जिनकी अवस्था अच्छी है, वे स्वामीजी महाराजको सादर अपने घर पर

निमन्त्रण करके आपके सत्संगसे अपनेको कृतार्थ समझते हैं। आज मध्यान्हको बागबाज़ारके अन्तर्गत राजवल्लभ पाड़ेमें श्रीरामकृष्ण भक्त श्रीयुत प्रियनाथजीके घरपर स्वामीजीका निमन्त्रण है। इस समाचारको पाते ही, बहुतसे भक्त उनके घर पर आरहे हैं। शिष्य भी लोगोंके मुंहसे सुनकर प्रियनाथजीके घरपर कोई २॥ बजे उपस्थित हुआ। स्वामीजीके साथ शिष्यका अभीतक कुछ परिचय नहीं है। शिष्यको जीवनभरमें यह प्रथमबार स्वामीजीका दर्शन लाभ हुआ है।

वहां उपस्थित होनेके साथही स्वामी तुरीयानन्दजी शिष्यको स्वामीजीके पास लेगये और उसका उनसे परिचय कराया। स्वामीजी महाराज जब मठपर पधारे थे, तब ही शिष्यरचित एक श्रीरामकृष्ण-स्तोत्र पढ़कर उसके विषयमें सब जान गये थे और यह भी मालम कर लिया था कि शिष्यका श्रीरामकृष्णजीके बड़े प्रेमीभक्त साधु नाग महाशयके पास गमनागमन रहता है।

शिष्यके स्वामीजीको प्रणाम करके बैठने पर महाराजने संस्कृत भाषामें इससे सम्भाषण किया और नाग महाशयकी कुशल पूंछी। और नाग महाशयके

आश्चर्य-जनक त्याग, गम्भीर ईश्वरानुराग और दीनताका वर्णन करके, बोले; "वयं तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती*" और शिष्यको आज्ञा दी कि लेख द्वारा इस श्लोकभागको उनके पास भेजदो। तदनन्तर बहुत भीड़ लगजानेके कारण वार्त्तालाप करनेका सुभीता न देखकर स्वामीजी शिष्य और तुरीयानन्दजीको लेकर पश्चिम दिशाके एक छोटे कमरेमें चले गये और शिष्यको लक्ष्य करके "विवेक-चूड़ामणि"मेंसे श्लोक कहने लगे-

"मा भैष्ट विद्वन् तव नास्त्यपायः
संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः।
येनैव याता यतयोऽस्य पारं
तमेव मार्गं तव निर्दिशामि"॥

"हे विद्वन्! डरो मत, तुम्हारा नाश नहीं है, संसार सागरके पार उतरनेका उपाय है। जिस उपायके आश्रयसे यती लोक संसारसागरके पार उतरे हैं, उसी श्रेष्ठ मार्गको मैं तुम्हें दिखाता हूं", और शिष्यको स्वाम शंकराचार्यकृत 'विवेकचूड़ामणि" ग्रन्थ पढ़नेका आदेश

---

*अभिज्ञानशकुन्तलम्।

किया।

शिष्य इन बातोंको सुनकर चिन्ता करने लगा—क्या स्वामीजी मुझको मन्त्रदीक्षा लेनेके लिये संकेत कर रहे हैं ? उस समय शिष्य वेदान्तवादी और बहुत ही आचारी था। गुरुसे मन्त्रलेनेकी जो प्रथा है उसपर उसका कुछ विश्वास नहीं था और वर्णाश्रम धर्मका वह एकान्त अनुयायी और पक्षपाती था।

फिर नानाप्रकारका प्रसंग चल पड़ा। इतनेमें किसीने आकर समाचार दिया कि 'मिरर' नामक दैनिक पत्रके सम्पादक श्रीयुक्त नरेन्द्रनाथसेनजी स्वामीजीके दर्शनके निमित्त पधारे हैं। स्वामीजीने संवादवाहकको आज्ञादी ' उन्हें यहां लिवा लाओ"। नरेन्द्रनाथजीने छोटे कमरेमें आकर आसन ग्रहण किया और अमेरिका इंग्लैंडके विषयमें स्वामीजीसे नानाप्रकारके प्रश्न करने लगे। प्रश्नोंके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि अमेरिकाके लोग जैसे सहृदय उदारचित्त, अतिथि सेवा तत्पर और नवीनभाव-ग्रहण उत्सुक हैं ऐसी जाति जगत्में और कोई नहीं है। अमेरिकामें जो कुछ कार्य हुआ है, वह मेरी शक्तिसे नहां हुआ वरन् इनने सहृदय होनेके कारण ही अमेरिकावासी इस वेदान्त

भावके ग्रहण करनेमें समर्थ हुए हैं इंग्लैंडके विषयमें स्वामी जीने कहा कि अंगरेज़ जातिकी नाईं प्राचीन रीति-नीतिकी पक्षपाती (Conservative) और कोई जाति जगत्में नहीं है। प्रथमतो यहलोग किसी नूतनभावका सहजमें ग्रहण करना नहीं चाहते; परन्तु यदि अध्यवसायके साथ कोई भाव उनको एकवार समझा दिया जावे तो फिर उसे कभीभी नहीं छोड़ने। ऐसी दृढ़प्रतिज्ञता किसी दूसरी जातिमें नहीं पाई जाती। इसी कारणसे अंगरेज़ जातिने सभ्यता और शक्तिके संचयमें पृथ्वीपर सबसे ऊंचा पद प्राप्त किया है।

फिर यह बात दिखा कर कि यदि कोई सुयोग्य प्रचारक मिले तो अमेरिकासे इंग्लैंडमेंही वेदान्त कार्य्यके विशेष स्थायी होनेकी अधिकतर सम्भावनाहै, बोले, "मैं केवल कार्य्यकी नींव डालकर आया हूं। मेरे पीछेके प्रचारक लोग उसी मार्ग पर चलनेसे भविष्यत्में बहुत फल प्राप्त करेंगे।"

नरेन्द्रनाथजीने पूछा—इस प्रकार धर्म्मप्रचार करनेसे भविष्यत्में हम लोगोंको क्या आशा है?

स्वामीजी बोले—हमारे देशमें जो कुछ है सो वेदान्त-

धर्म्म ही है। पाश्चात्य सभ्यताके साथ तुलना करनेसे यह कहना ही पड़ता है कि हमारी सभ्यता उसकी पासंग भी नहीं है। परन्तु धर्म्म लाभ विषयमें यह सार्वभौमिक वेदान्तवाद नाना प्रकारके मतावलम्बियोंको समान अधिकार दे रहा है। इसके प्रचारसे पाश्चात्य सभ्य संसारको विदित होगा कि किसी समयमें भारतवर्षमें कैसे आश्चर्यजनक धर्म्मभावका स्फुरण हुआथा और अवतक वर्तमान है। पाश्चात्य जातियोंमें इस मतकी चर्चा होनेसे उनकी हमपर श्रद्धा बढ़ेगी और हमारे प्रति सहानुभूति प्रगट होगी-वहुतसी अवतक होभी चुकी है। इसप्रकारसे उनकी यथार्थ श्रद्धा और सहानुभूति प्राप्त करने पर हम अपने ऐहिक जीवनके लिये उनसे वैज्ञानिक शिक्षा ग्रहण करके जीवन संग्राममें अधिक योग्यता लाभ करेंगे। पक्षान्तरे वे हमसे वेदान्तमतको ग्रहण करके पारमार्थिक कल्याण लाभ करनेमें समर्थ होंगे।

नरेन्द्रनाथजीने पूछा-इस प्रकारके आदान प्रदानसे हमारी राजनैतिक उन्नतिकी कोई आशा है या नहीं? स्वामीजी बोले, "वे (पाश्चात्य जाति) महापराक्रमशाली विरोचनकी सन्तान हैं। उनकी शक्तिसे पंचभूत

क्रीड़ापुत्तलिकावत् उनकी सेवा कर रहे हैं। यदि आपको यह प्रतीत हो कि इसी स्थूल पंचभौतिक शक्तिके प्रयोगसे किसी न किसी दिन हम उनसे स्वतन्त्र होजांय तो आपका ऐसा अनुमान सर्वथा निर्मूल है। इस शक्ति प्रयोगकुशलतामें उनमें और हममें ऐसा अन्तर है जैसा कि हिमालय और एक सामान्य उपलखण्डमें। मेरे मतको आप सुनियेगा ? हम लोग उक्त प्रकारसे वेदान्तधर्मका गूढ़ रहस्य पाश्चात्य जगतमें प्रचार करके उन महाशक्ति धारण करने वालोंकी श्रद्धा और सहानुभूतिको आकर्षण करेंगे और आध्यात्मिक विषयमें सर्वदा हम उनके गुरुस्थानपर आरूढ रहेंगे। पक्षान्तरे, वे अन्यान्य पार्थिव विषयोंमें हमारे गुरु बने रहेंगे। जिस दिन भारतवासी अपने धर्म विषयसे विमुख होकर पाश्चात्य जगत्से धर्मके जाननेकी चेष्टा करेंगे उसी दिन इस अधःपतित जातिका जातित्व सदाके लिये नष्ट भ्रष्ट हो जावेगा। हमें यह देदो, हमें वह देदो, ऐसे आन्दोलनसे सफलता प्राप्त नहीं होगी। परन्त उस आदान प्रदान रूप कार्यसे जब दोनों पक्षमें श्रद्धा और सहानुभूतिकी एक प्रेमलता उपजेगी तब अधिक चिल्लाने-

की आवश्यकता भी नहीं रहेगी । वे स्वयं हमारे लिये सब कुछ कर देंगे । मेरा विश्वास है कि इसी प्रकारसे वेदान्त धर्मकी चर्चा और वेदान्तका सर्वत्र प्रचार होनेसे हमारे देश, और पाश्चात्य देश, दोनोंको ही विशेष लाभ होगा । इसके सामने राजनैतिकचर्चा मेरी समझमें गौण (Secondary) उपाय दीखती है । अपने इस विश्वासको कार्यमें परिणत करनेमें अपने प्राण तक भी दे दूंगा। यदि आप समझते हों कि किसी दूसरे उपाय से भारतका कल्याण साधित होगा तो आप उसी उपायका अवलम्बन कीजिये।"

नरेन्द्रनाथजी स्वामीजी महाराजकी बातों पर विनावाद सहमत हुवे और थोड़ी देर पीछे चले गये । स्वामीजीकी पूर्वोक्त बातोंका श्रवण कर शिष्य अवाक् होगया और उनकी दिव्य मूर्तिकी ओर टकटकी लगाये देखता रहा।

नरेन्द्रनाथजीके चले जानेके पश्चात् गोरक्षिणीसभाके एक उद्योगी प्रचारक स्वामीजीके दर्शनको साधु संन्यासियोंका वेष धारण किये हुवे आये। उनके मस्तक-पर गेरुवे रंगकी एक पगड़ी थी । देखते ही जान

पड़ता था कि वह हिन्दुस्तानी हैं । इन प्रचारकका आगमन समाचार पाते ही स्वामीजी महाराज घरसे वाहार आये । प्रचारकजीने स्वामीजीको अभिवादन किया और गोमाताका एक चित्र आपको दिया । स्वामीजी महाराजने उसको ले लिया और किसी सञ्चारकको यह देकर प्रचारकजीसे निम्नलिखित वार्त्तालाप किया।

स्वामीजी—आप लोगोंकी सभाका उद्देश क्या है ?

प्रचारक—हम देशकी गोमाताओंको कसाईके हाथोंसे वचाते हैं । स्थान स्थानपर गोशाला स्थापित की गई हैं जहां रोगग्रस्त, दुर्वल और कसाइयोंसे मोल ली हुई गोमाताओंका पालन किया जाता है ।

स्वामीजी—वड़ी प्रशंसनीय वात है। सभाकी आय किस प्रकारसे होती है ?

प्रचारक—आप जैसे धर्मात्मा जनोंकी कृपासे जो कुछ प्राप्त होता है उसीसे सभा का कार्य्य चलता है।

स्वामीजी—आपकी नगद पूंजी कितनी है ?

प्रचारक—मारवाड़ी वैश्य-सम्प्रदाय इस कार्यमें विशेष सहायता करते हैं। वे इस सत्कार्यमें बहुतसा धन प्रदान करते हैं।

स्वामीजी—मध्य भारत में इस वर्ष भयंकर दुर्भिक्ष हुआ है। भारत गवर्नमेंटने प्रकाश किया है कि नवलक्ष मनुष्य अन्नकष्टसे मर गये हैं। क्या आपकी सभाने इस दुर्भिक्षमें कोई साहाय्य करनेका आयोजन किया था?

प्रचारक—हम दुर्भिक्षादिमें कुछ सहायता नहीं करते। केवल गोमाताओंके रक्षा करनेके उद्देशसे यह सभा स्थापित हुई है।

स्वामीजी—आपके देखते २ इस दुर्भिक्षमें लाख २ आपके भाई विकराल कालके चंगुलमें फंस गये। आप लोगोंके पास बहुत नगद रुपया जमा रहने पर भी क्या उनको एक मुट्ठीभर अन्न देकर इस भीषण दुर्दिनमें उनकी सहायता करना उचित नहीं समझा गया?

प्रचारक—नहीं, मनुष्यके कर्मफल अर्थात् पापोंसे यह दुर्भिक्ष पड़ा था। उन्होंने कर्मानुसार फलभोग किया। जैसे कर्म हैं वैसाही फल हुआ है।

प्रथम वही।

प्रचारककी बात सुनते ही स्वामीजीके क्रोधकी ज्वाला भड़क उठी और ऐसा मालूम होने लगा कि आपके नयनप्रान्तसे अग्निकण स्फुरण हो रहे हैं। परन्तु अपनेको सभालकर बोले, "जो सभा समिति मनुष्योंसे सहानुभूति नहीं रखती, अपने भाई अन्न विना मर रहे हैं यह देखकर भी उनकी रक्षाके निमित्त एक मुष्टिअन्नसे सहायता करनेको उद्यत नहीं होती, पशु पक्षियोंके निमित्त सहस्र २ मुद्रा व्यय कररही है, उस सभा समितिसे मैं लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखता। उससे मनुष्यसमाज का विशेषकुछ उपकार होना असंभवसा जान पड़ता है। 'अपने कर्म फलसे मनुष्य मरते हैं!' इस प्रकार सब बातोंमें कर्म्मफलका आश्रयलेनेसे किसी विषयमें, जगत्में कोईभी उद्योग करना वृथा है। यदि यह प्रमाण स्वीकार करलिया जाय, पशुरक्षाका काम भी इसीके अन्तर्गत है। तुम्हारे पक्षमें भी कहा जा सकता है कि गो-माताएं अपने अपने कर्म्मफलसे कसाइयोंके पास पहुंचती हैं और मारी-जाती हैं—इससे उनकी रक्षाका उद्योग करनेका कोई प्रयोजन नहीं है"।

प्रचारकजी कुछ लज्जित होकर बोले—"हां महाशय

आपने जो कहा वह सत्य है, परन्तु शास्त्रमें लिखा है कि गौ हमारी माता है।"

स्वामीजी हंसकर बोले-" जी हां, गौ हमारी माता है यह मैं भली भाँति समझता हूं। यदि यह न होती तो ऐसी कृती सन्तान और दूसरा कौन प्रसव करता ?

प्रचारकजी इस विषयपर और कुछ नहीं बोले। स्यात् स्वामीजीकी हंसी प्रचारककी समझमें नहीं आई । आगे स्वामीजीसे उन्होंने कहा, "इस समितिकी ओरसे आपके सम्मुख भिक्षाके लिये उपस्थित हुआ हूं।"

स्वामीजी—मैं साधु सन्यासी हूं । रुपया मेरे पास कहां है कि मैं आपकी सहायता करूं? परन्तु यह भी कहता हूं कि यदि कभी मेरे पास धन आवे तब मैं प्रथम उस अर्थको मनुष्यसेवामें व्यय करूंगा। सबसे पहिले मनुष्यकी रक्षा कर्त्तव्य है—अन्नदान, धर्म्मदान, विद्यादान करना पड़ेगा। इन कामोंको करके यदि कुछ रुपया बचेगा तब आपकी समितिको कुछ दूंगा ।" इन बातोंको सुनकर प्रचारकजी स्वामीजी महाराजको अभिवादन करके चले गये । तब स्वामीजी हमसे कहने लगे, देखो कैसे अचम्भेकी बात उन्होंने बतलाई। कहा कि मनुष्य अपने कर्मफलसे मरता

है उसपर दया करनेसे क्या होगा? इस बातका यह एक विशेष प्रमाण है कि हमारे देशका कितना पतन हुआ है। तुम्हारे हिन्दूधर्म्मका कर्मवाद कहां जाकर पहुंचा! जिस मनुष्यका मनुष्यके कारण जी नहीं दुखता वह अपनेको मनुष्य कैसे कहता है? इन बातोंको कहनेके साथ ही स्वामीजी महाराजका शरीर क्षोभ और दुःखसे सनसना उठा।

अब स्वामीजी महाराज धूम्रपान करने लगे और शिष्यसे बोले—फिर हमसे कभी भेंट करना।

शिष्य। आप कहां विराजियेगा? संभव है कि आप किसी बड़े आदमीके स्थान पर ठहरेंगे, वहां हमको कोई घुसने भी न देगा।

स्वामीजी। इस समय तो मैं कभी आलमबाज़ारके मठमें, कभी काशीपुरमें गोपाललाल शीलकी कोठीमें रहूंगा तुम वहां आजाना।

शिष्य। महाशय, बड़ी इच्छा है कि एकान्तम आपस वार्त्तालाप करूं।

स्वामीजी। बहुत अच्छा, किसी दिन रात्रिमें आजाओ, वेदान्तकी चर्चा होगी।

शिष्य। महाशय, मैंने सुना है कि आपके साथ कुछ अंगरेज़ और अमेरिकन आये हैं। वे मेरे वस्त्रादिकके पह-रावे और बातचीतसे अप्रसन्न तो नहीं होंगे?

स्वामीजी। वे भी तो मनुष्य हैं। विशेष करके वे वेदान्तधर्मनिष्ठ हैं। वे तुम्हारे समागम व सम्भाषणसे आनन्दित होंगे।

शिष्य। महाशय, वेदान्तके अधिकारियोंके लिये जो सब लक्षण होने चाहियें, वे सब आपके पाश्चात्य शिष्योंमें कैसे विद्यमान हैं? शास्त्र कहता है- "अधीत वेदवेदान्त, कृतप्रायश्चित्त, नित्यनैमित्तिककर्म्मानुष्ठानकारी आहार विहारमें परम संयमी, विशेष करके चतुःसाधन सम्पन्न नहीं होनेसे वेदान्तका अधिकारी नहीं बनता।" आपके पाश्चात्य शिष्यगण प्रथम तो ब्राह्मण नहीं हैं दूसरे भोजनादिकमें अनाचारी, वे वेदान्तवाद कैसे समझ गये?

स्वामीजी। वे वेदान्तको समझे या नहीं, तुम उनसे मेल मिलाप करनेसे ही जान जाओगे।

मालूम पड़ता है कि स्वामीजी महाराज अब तक समझ गयेथे कि शिष्य एक निष्ठावान्, आचारी हिन्दू है।

प्रथम वल्ली।

इसके अनन्तर स्वामीजी महाराज श्रीरामकृष्णभक्त-परिवेष्टित होकर श्रीयुत बलराम वसुजीके स्थानको गये। शिष्य भी मोहल्ला वटतलेसे एक विवेकचूड़ामणि ग्रन्थ मोललेकर मोहल्ले दर्ज़ीपाड़ेमें अपने डेरेकी ओर च गया।

द्वितीय वल्ली ।

स्थान—कलकत्तेसे काशीपुर जानेका रास्ता और गोपाललाल शीलका बाग़।

वर्ष-१८९७ खृष्टाब्द ।

विषय—चेतनाका लक्षण, जीवनसंग्राममें पटुता—मनुष्यजातिके जीवनी-शक्तिपरीक्षाके निमित्त भी वही नियम—भारतके महत्वका कारण—प्रत्येक मनुष्यमें अनन्तशक्तिकी उत्सस्वरूप आत्मा विद्यमान—इसीके दिखलाने और समझानेके लिये महा-पुरुषोंका आगमन—धर्म अनुभूतिका विषय—तीव्र तृष्णाही धर्म्म-लाभ करनेका उपाय—वर्त्तमान कालमें गीतोक्त कर्मकी आवश्यकता—गीताकार श्रीकृष्णजीके पूजनकी आवश्यकता—देशमें रजोगुणका उद्दीपन करानेका प्रयोजन ।

आज मध्यान्हको स्वामीजी महाराज श्रीयुत गिरीश-चन्द्र घोषजीके मकान पर आराम कररहे थे। शिष्यने वहां आकर स्वामीजी महाराजको प्रणाम किया और उनको गोपाललाल शीलके महलको जानेके लिये प्रस्तुत पाया। गाड़ीभी उपस्थित थी । स्वामीजीने शिष्यसे कहा, "मेरे साथ तू चल।" शिष्यके सम्मत होनेपर स्वामीजी उसको

साथ लेकर गाड़ीमें सवार हुए और गाड़ीभी चलदी। चितपुरके रास्तेपर पहुंचकर गंगा दर्शन होतेही स्वामीजी अपने मनमें "गंगा-तरंग-रमणीय-जटाकलापं" इत्यादि स्वरसे पढ़ने लगे। शिष्य मुग्ध होकर इस अद्भुत स्वर लहरीको चुपचाप सुननेलगा। इस प्रकारसे कुछ समय व्यतीत होनेपर एक रेलगाडीकेएञ्जिनको चितपुर-पुलकी ओर जाते देख स्वामीजीने शिष्यसे कहा, "देखो कैसा सिंहकी भांति जा रहाहै"। शिष्यने कहा "यहतो जड़ है' उसके पीछे मनुष्यकी चेतनाशक्ति काम करती है और इस कारणसे वह चलता है। इस प्रकार चलनेसे उसका अपना बल क्या प्रगट होता", ?

स्वामीजी। अच्छा, बतलाओ तो चेतनाका लक्षण क्या है?

शिष्य। क्यों, महाशय, चेतना वही है जिसमें बुद्धिकी क्रिया पाई जाती है।

स्वामीजी। जो कुछ प्रकृतिके विरुद्ध लड़ाई करता है वह चेतना है। उसमें ही चैतन्यका विकाश है। यदि एक चींटीको मारने लगो तो देखोगे कि वह भी अपनी जीवनरक्षाके लिये एकवार लड़ाई करेगी। जहां चेष्टा

या पुरुषकार है, जहां संग्राम है, वहां ही जीवनका चिन्ह और वहां ही चैतन्यका प्रकाश है।

शिष्य । यही नियम मनुष्य और मनुष्यजातिसमूहके सम्बन्धमें भी ठीक है?

स्वामीजी । ठीक है या नहीं यह जगत्के इतिहास पढ़कर देखो । यह नियम तुम्हारे अतिरिक्त सब जातियोंके सम्बन्धमें ठीक है । आजकल जगत् भरमें तुमहीं केवल जड़के समान पड़े हो । तुमको विलकुल (hypnotise) मन्त्रमुग्ध कर डाला है । बहुत प्राचीन समयसे औरोंने तुमको वतलाया कि तुम हीन हो तुममें कोई शक्ति नहीं है—और तुम भी यह सुनकर सहस्रों वर्षसे अपनेको समझने लगेहो कि हम हीन हैं—हम निकम्मे हैं । ऐसा ध्यान करते करते तुम वैसे ही वन गयेहो । (अपना शरीर दिखलाकर) यह शरीर भी तो इसी देशकी मिट्टीसे बना है, परन्तु मैंने कभी ऐसीचिन्ता नहींकी । देखो इसीकारण उसकी (ईश्वर की) इच्छासे जो हमको चिरकालसे हीन समझते हैं, उन्होंने ही मेरा देवताके समान सम्मान किया और करते हैं । यदि तुम भी सोच सकते हो कि हमारे अन्दर अनन्तशक्ति, अपारज्ञान, अदम्य उत्साह वर्त्तमान

है, और अपने भीतरकी इस शक्तिको जगा सको तो तुमभी मेरे समान हो सकोगे।

शिष्य। महाशय, ऐसी चिन्ता करनेकी शक्ति कहांसे मिले ? ऐसा शिक्षक या उपदेशक कहां मिले जो लडकपन ही से इन बातोंको सुनाता और समझाता रहे ! हमनेतो सबसे यही सुना और सीखा कि आजकलका पठन पाठन केवल नौकरीके निमित्त है।

स्वामीजी। इसीलिये दूसरे प्रकारसे सिखलाने और दिखलानेको हम आये हैं। तुम इस तत्त्वको हमसे सीखो, समझो और अनुभव करो। फिर इस भावको नगरनगरमें, गाँवगाँवमें, पुरवे पुरवेमें फैला दो; सबके पास जाजाकर कहो, "उठो जागो और सोओ मत; सम्पूर्ण अभाव और दुःख नष्ट करनेकी शक्ति तुम्हींमें है; इस बातपर विश्वास करने ही से वह शक्ति जाग उठेगी"। इस बातको सबसे कहो और साथ साथ सरल भाषामें विज्ञान, दर्शन, भूगोल और इतिहासकी मूल बातोंको सर्वसाधारणमें फैला दो। मेरा यह विचार है कि मैं अविवाहित नवयुवकोंको लेकर एक शिक्षाकेन्द्र स्थापित करूं; पहले उनको शिक्षा दूं तत्पश्चात् उनके द्वारा इस

कार्यका प्रचार कराऊं ।

शिष्य । महाशय, यह तो बहुत अर्थ सापेक्ष है । और रुपया कहाँ से आवेगा ?

स्वामीजी । अरे तू क्या कहता है ? मनुष्य ही तो रुपया पैदा करता है । रुपयेसे मनुष्य पैदा होता है यहभी कभी कहीं सुनाहै ? यदि तू अपने मन और मुखको एक करसके और वचन व क्रियाको एक करसके तो धन आपही आप जलवत् तेरे पास बह आवेगा ।

शिष्य । अच्छा महाशय, माना कि धन आगया और आपने भी इस सत्कार्यका अनुष्ठान कर दिया । तबभी क्या हुआ ? इससे पूर्व कितनेही महापुरुष कितने सत्-कार्यका अनुष्ठान करगये, वे सब (सत्कार्य) अब कहां है । यह निश्चय है कि आपके भी प्रतिष्ठित कार्यकी भविष्यमें ऐसीही दशा होगी । तो ऐसे उद्यमकी आवश्यकता क्या है ?

स्वामीजी । भविष्यमें क्या होगा, इसी चिन्तामें जो सर्वदा रहता है उससे कोई कार्य नहीं हो सकता । इसलिये जिस बातको तूने यह समझा है कि वह सत्य है उसे अभी करडाल. भविष्यमें क्या होगा क्या नहीं होगा

इसकी चिन्ता करनेको क्या आवश्यकता है? तनिकसा तो जीवन है यदि इसमें भी किसी कार्यके लाभालाभका विचार किया तो क्या उस कार्यका होना सम्भव है? फलाफल देनेवाले तो एकमात्र वह ईश्वर हैं। वह जैसा उचित होगा वैसाही करेंगे। इस विषयमें पड़नेसे तेरा क्या प्रयोजन है। तू उस विषयकी चिन्ता न कर और अपना काम किये जा।

बातें करते २ गाड़ी कोठी पर पहुंची। कलकत्तेसे बहुत लोग स्वामीजीके दर्शनके लिये वहां आये थे। स्वामीजी गाड़ीसे उतरकर कमरेमें जा बैठे और सबसे बात चीत करने लगे। स्वामीजीके विलायती शिष्य (Goodwin) गुडुईन साहेब सदेहसेवाकी भाँति पासही खड़े थे। इनके साथ शिष्यका परिचय पहिले ही हो चुकाथा, इसीलिये शिष्य भी उनके पास हो बैठगया और दोनों मिलकर स्वामीजीके विषयमें नाना प्रकारका कथापकथन करने लगे।

सन्ध्या होनेपर स्वामीजी महाराजने शिष्यको बुलाकर पूंछा, "क्या तूने कठोपनिषद् कन्ठस्थ करलिया है"?

शिष्य। नहीं महाशय, मैंने सशंकरभाष्य उसका पाठ

मात्र किया है।

स्वामीजी। उपनिषदोंमें ऐसा सुन्दर ग्रन्थ और कोई नहीं है। मैं चाहता हूं कि तू इसे कण्ठस्थ करले। नाचिकेताके समान श्रद्धा, साहस, विचार और वैराग्य अपने जीवनमें लानेकी चेष्टा कर, केवल पढ़ने मात्रसे क्या होगा ?

शिष्य। ऐसी कृपा कीजिये कि दासकोभी उस सबका अनुभव होजाय।

स्वामीजी। तुमने तो गुरुमहाराजका कथन सुना है ? वे कहा करतेथे कि कृपारूप वायु सर्वदा चलती रहती है, तू पाल उठा क्यों नहीं देता ? रे बच्चा, क्या कोई किसीको कुछ कर देसकता है ? गुरु तो केवल यही बता-देते हैं कि अपना कर्म अपनेही हाथमें है। बीजही की शक्तिसे वृक्ष होताहै। जल वायु तो उसके सहायक मात्र होते हैं।

शिष्य। तो देखिये महाशय, बाहरकी सहायता भी आवश्यक है ?

स्वामीजी। हां, है। परन्तु बात यह है कि भीतर पदार्थ न रहनेसे, सैकड़ों प्रकारकी सहायतासे भी कुछ

फल नहीं होता। और आत्मानुभूतिके लिये एक अवसर सबहीको मिलता है। क्यों कि सभी ब्रह्म हैं। ऊंच नीचका भेद ब्रह्म विकाशके तारतम्य मात्रसे होता है। समय आने पर सबकाही पूर्ण विकाश होता है। इसी लिये शास्त्रमें कहा है, "कालेनात्मनि विन्दति"।

शिष्य। महाशय, ऐसा कब होगा? शास्त्रसे जान पड़ता है कि हमने बहुतसा जन्म अज्ञानतामें बिताया है।

स्वामीजी। डर क्या है? अब जब तू यहां आगया है, इसी जन्ममें तेरी इच्छा पूरी होजायगी। मुक्ति-समाधि ये सब ब्रह्मप्रकाशके पथपरके प्रतिबन्धको केवल दूर करनेके लिये होते हैं। क्योंकि आत्मा सूर्यके समान सर्वदाही चमकतीहै। केवल अज्ञानरूपी बादलने उसे ढक लियाहै। यहभी हट जायगा और सूर्यका प्रकाश होगा। तब ही "भिद्यते हृदयग्रन्थिः" इत्यादि अवस्था होगी। जितने पथ देखते हो वे सब इस प्रतिबन्धकरूपी बादलको दूर करनेका उपदेश देते हैं। जिसने जिस भावसे आत्मानुभव किया है वह उसी भावसे उपदेश करगया है, परन्तु सबका उद्देश है आत्मज्ञान-आत्मदर्शन। इसमें सब जातियोंका, सब प्राणियोंको समान अधिकार है।

यही सर्ववादिसम्मत मत है ।

शिष्य । महाशय, शास्त्रके इस वचनको जब मैं पढ़ता हूं या सुनता हूं तब आत्मवस्तु प्रत्यक्ष न होनेके कारण मन बहुतही चचल होता है ।

स्वामीजी । इसीको " व्याकुलता " कहते हैं । यह जितनी बढ़ेगी प्रतिवन्धरूप बादल उतनाही नष्ट होगा, उतना ही श्रद्धाका समाधान होगा । शनैः २ आत्मा "करतलामलकवत् प्रत्यक्ष" होगा । अनुभूति ही धर्मका प्राण है । कुछ कुछ आचर तथा नियम सब कोई मान सकता है । सब कोई कुछ विधि व नियम पालन भी कर सकता है, परन्तु अनुभूतिके लिये कितने लोग व्याकुल होते हैं ? व्याकुलता (ईश्वर लाभ या आत्मज्ञानके निमित्त उन्मत्तता होना) ही यथार्थ धर्मप्राणता है । भगवान् श्रीकृष्णजीके लिये गोपियोंकी जैसी उद्दाम उन्मत्तता थी, वैसीही व्याकुलता आत्मदर्शनके लिये होनी चाहिये । गोपियोंके मनमें भी स्त्री पुरुषका भेद कुछ कुछ था परन्तु ठीक२ आत्मज्ञानमें लिंगभेद किंचित नहीं रहता" । बात करते हुए स्वामीजी महाराजने जयदेवलिखित " गीत-गोविन्द " के विषयमें कहा, "श्री जयदेवस्वामी

संस्कृतभाषाके अन्तिम कवि थे। उन्होंने कई स्थानोंमें भावका अपेक्षा श्रुतिमधुर वाक्यविन्यास (Jingling of words) पर अधिक ध्यान दियाहै। देखो, गीतगोविन्द के "पतति पतत्रे" इत्यादि श्लोकमें कविने अनुराग तथा व्याकुलताकी पराकष्ठा दिखलाई है। आत्मदर्शनके लिये वैसा ही अनुराग होना चाहिये।

फिर वृन्दावनलीलाको छोड़ कर यह भी देखो कि कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णजो कैसे हृदयग्राही हैं—ऐसे भयानक युद्धकोलाहलमें भी कृष्णभगवान् कैसे स्थिर, गंभीर, तथा शांत हैं। युद्धक्षेत्रमें ही अर्जुनको गीता बतला रहे हैं। क्षत्रियका स्वधर्म जो युद्ध है उसीमें उनको उत्साहित कर रहे हैं।

इस भयंकर युद्धके प्रवर्त्तक होकर भी कैसे कर्महीन रहे, अस्त्र धारण नहीं किया। जिधरसे देखोगे श्रीकृष्ण चरित्रको सर्वांगसम्पूर्ण पाओगे। ज्ञान, कर्म्म, भक्ति योग इन सबके मानो स्वरूप ही हैं। श्रीकृष्णजीके इसी भावकी आजकल विशेष आलोचना होनी चाहिये। अब वृन्दावनके वंशीधारी कृष्णके ध्यान करनेसे कुछ नहीं बनेगा, इससे जीवका उद्धार नहीं होगा। अब प्रयोजन है

गीताके सिंहनादकारी श्रीकृष्णजीकी, धनुषधारी रामचन्द्रजीकी, महावीरजीकी, कालीमाईकी पूजाका। इसीसे लोग महा उद्यमसे कर्म्मकाण्डमें लगेंगे और शक्तिमान बनेंगे। मैंने बहुत अच्छी प्रकारसे विचारकर देखा है कि वर्त्तमानमें जो धर्म्म २ कर रहे हैं, उनमेंसे बहुत लोग पाशविक दुर्बलतासे भरे हुए हैं; या विकृतमस्तिष्क अथवा उन्मादग्रस्त हैं। विना रजोगुणके तेरा अब इहलोक भी नहीं है—परलोकभी नहीं। घोरतमोगुणसे देश भर गया है। फलभी उसका वही होरहा है—इस जीवनमें दासत्व और पर जीवनमें नरक।

शिष्य। पाश्चात्योंमें जो रजोभाव है उसे देखकर क्या आपको आशा है कि वेभी सात्विक बनेंगे?

स्वामीजी। निश्चय बनेंगे, निःसन्देह बनेंगे। महारजोगुणके आश्रय लेने वाले वे अब भोगावस्थाकी चरम सीमामें पहुंच गये हैं। उनको योग नहीं होगा तो क्या तुम्हारे समान भूखे. उदरके निमित्त मारे मारे फिरने वालोंको होगा? उनके उत्कृष्ट भोगोंको देख "मेघदूत"के " विद्युद्वन्तं ललितवनिताः " इत्यादि चित्रका स्मरण होता है। तुम्हारे भोगमें क्या है? केवल गन्धे मकानमें

रहना, फटे लटे चिथड़े पर सोना, और प्रतिवर्ष शूकरके समान अपना वंश वढ़ाना—भूखे, भिखमंगे तथा दासोंको जन्म देना ! इसी कारण मैं कहताहूं कि अब मनुष्योंमें रजोगुण उद्दीपन कराके उनको कर्मशील करना पड़ेगा कर्म्म—कर्म्म—कर्म्म, अब "नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय।" इसको छोड़ उद्धारका अन्य कोई भी पथ नहीं है।

शिष्य। महाशय, क्या हमारे पूर्वज भी कभी रजोगुण सम्पन्न थे ?

स्वामीजी। क्यों नहीं थे ? इतिहास तो वतलाता है कि उन्होंने अनेक देशोंको जय किया और वहां उपनिवेश भी स्थापन किया। तिब्वत, चीन, सुमात्रा, जापान तक धर्म्मप्रचारकोंको भेजाथा। विना रजोगुणका आश्रय लिये उन्नतिका कोईभी उपाय नहीं है।

कथा प्रसंगमें रात्रि वढ़ गई। इतनेमें कुमारीमूलर (Miss Muller) आपहुंचीं। ये एक अंगरेज़ रमणी थीं। स्वामीजी पर विशेष श्रद्धा करती थीं। किंचित् वात चीत करके कुमारी मूलर ऊपर चली गईं।

स्वामीजी। देखता है ये कैसी वीर जातिकी है ? बड़े धनवान की लड़की है। तब भी धर्म्मलाभ के लिये

सब छोड़कर कहाँ आ पहुंची है!

शिष्य। हां, महाशय। परन्तु आपका क्रिया-कलाप और भी अद्भुत है। कितने ही अंग्रेज़ पुरुष और रमणी आपकी सेवाके लिये सर्वदा उद्यत हैं। आजकल यह बड़ी आश्चर्यजनक बात प्रतीत होती है।

स्वामीजी। (अपने शरीरकी ओर संकेत करके) यदि शरीर रहा तो कितने ही और भी देखोगे, कुछ उत्साही और अनुरागी युवक मिलनेसे मैं देशको लौटपोट कर दूंगा। मन्द्राजमें ऐसे युवक थोड़े हैं, परन्तु वंगाल देशसे मेरी आशा विशेष है। ऐसे स्वच्छ मस्तिष्कवाले और कहीं नहीं पैदा होते। किन्तु इनके शरीरमें शक्ति नहीं है। मस्तिष्क और मांस-पेशीयोंका वल साथ ही वढ़ना चाहिये। वलवान् शरीरके साथ तीव्र वुद्धि हो तो सारा जगत् पदानत हो सकता है।

इतनेमें समाचार मिला कि स्वामीजीका भोजन तैयार है। स्वामीजीने शिष्यसे कहा, "मेरा भोजन देखने चल"। जव स्वामीजी भोजन पा रहेथे तव कहने लगे "वहुत चर्वी और तेलसे पका हुआ भोजन अच्छा नहीं होता है। पूरीसे रोटी अच्छी होती है। पूरी रोगियोंका

खाना है। मांस, मछली और नवीन शाक खाना चाहिये।" इन बातोंको कहते सुनते शिष्यसे पूछा अरे, कै रोटी मैंने खा ली? क्या और भी खाना चाहिये? कितनी रोटी खाई यह स्मरण नहीं रहा, और यह भी अनुमान नहीं होसका कि भूख है या नहीं। बातोंमें शरीरज्ञान ऐसा जाता रहा।

और कुछ पाकर स्वामीजीने अपना भोजन समाप्त किया। शिष्य भी आज्ञा पाकर कलकत्तेको लौटा। गाड़ी न मिलनेसे पैदल ही चला। चलते चलते विचार करने लगा कि जाने कल कब तक स्वामीजीके दर्शन पाऊंगा।

तृतीय वल्ली ।

स्थान-काशीपुर, गोपाललालशीलका उद्यान ।

वर्ष-१८९७ खृष्टाब्द ।

विषय-स्वामीजीमें अद्भुत शक्तिका विकाश-स्वामीजीके दर्शनके निमित्त कलकत्तेके अन्तर्गत बड़ाबाज़ारके हिन्दुस्थानी पण्डितोंका आगमन-पण्डितोंके साथ संस्कृतभाषामें स्वामीजीका शास्त्रालाप—स्वामीजीके सम्बन्धमें पण्डितोंकी समझ-स्वामीजीसे उनके गुरुभाइयोंकी प्रीति-सभ्यता किसे कहते हैं—भारतकी प्राचीन सभ्यताका विशेषत्व-श्रीरामकृष्णदेवजीके आगमनसे प्राच्य व प्रतीच्य सभ्यताके सम्मेलनसे एक नवीन युगका आविर्भाव-पाश्चात्य देशमें धार्मिक लोगोंके वाह्य चालचलनके सम्बन्धमें कैसा विचार—भाव समाधि व निर्विकल्पसमाधिकी विभिन्नता—श्रीरामकृष्णजी भावराज्यके राजा-ब्रह्मज्ञपुरुष ही यथार्थमें लोकगुरु—कुलगुरु प्रथाकी अपकीर्त्ति-धर्मकी ग्लानि दूर करनेको ही श्रीठाकुरजीका आगमन—पाश्चात्यमें स्वामीजीने श्रीठाकुरजीका किस प्रकारसे प्रचार किया ।

स्वामीजी विलायतसे प्रथम बार लौटकर कुछदिन तक काशीपुरमें गोपाललालशीलके उद्यानमें विराजे ।

शिष्यका उस समय वहां प्रतिदिन गमनागमन रहताथा। स्वामीजीके दर्शनोंके निमित्त केवल शिष्य ही नहीं वरन् और बहुतसे उत्साही युवकोंकी वहां भीड़ रहती थी। कुमारी मूलारने स्वामीजीके साथ आकर प्रथम यहीं अवस्थान किया था। शिष्यके गुरुभाई गुडुईन साहेब भी इसही उद्यान वाटिकामें स्वामीजीके साथ रहते थे।

उस समय स्वामीजीका यश भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तक छा रहा था। इसकारण कोई कौतुकाविष्ट होकर, कोई धर्मतत्व पूछनेके निमित्त और कोई स्वामीजीके ज्ञानगौरवकी परीक्षा करनेको उनके पास आताथा।

शिष्यने देखा कि प्रश्न करनेवाले स्वामीजीके शास्त्र-व्याख्यानोंको सुनकर मोहित होतेथे और उनकी प्रकटित प्रतिभासे बड़ेर दार्शनिक और विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध पण्डितगण निर्वाक् रह जाते थे; मानो स्वामीजीके कण्ठमें ही स्वयं सरस्वती माता विराजित हैं। इसी उद्यानमें स्थितिके समय उनकी अलौकिक योगदृष्टिका परिचय समय समय होता था।

कलकत्तेके बड़ाबाज़ारमें बहुतसे पण्डित लोग रहते

हैं, जिनका प्रतिपालन मारवाड़ियोंके अन्नसे ही होताहै। इनमेंसे कुछ प्रसिद्ध परिडत जन स्वामीजीसे विचार-वितर्कके निमित्त एक दिन इस बागमें आपहुंचे। शिष्य उस दिन वहां उपस्थित था। आये हुए परिडतोंमेंसे सब कोई धाराप्रवाह संस्कृतभाषामें वार्तालाप कर सकते थे उन्होंने आतेही मराडली वेष्टित स्वामीजीका सत्कार कर संस्कृतभाषामें उनसे वार्तालाप आरम्भ किया। स्वामीजीने भी संस्कृत ही में उत्तर दिया। उस दिन कौनसे विषय पर परिडतोंका वादानुवाद हुआथा यह अब शिष्यको स्मरण नहीं है। परन्तु यह जान पड़ता है कि लगभग सबही परिडतोंने एकस्वरसे चिल्लाकर संस्कृतमें दर्शनशास्त्रोंके कूट प्रश्न किये और स्वामीजीने शान्त तथा गम्भीरताके साथ धीरे २ उन विषयोंमें अपने सिद्धांतोंको कहा। यह भी अनुमान होता है कि स्वामीजीकी संस्कृत भाषा परिडतोंकी भाषासे सुननेमें अधिक मधुर तथा सरस थी।

उस दिन संस्कृत भाषामें स्वामीजीका ऐसी अनर्गल वार्तालाप सुनकर उनके सब गुरुभाई भी मोहित हुए। क्योंकि वे जानते थे कि छः वर्ष यूरोप और

अमेरिकामें रहनेसे स्वामीजीको संस्कृत भाषाकी आलोचना करनेका कोई अवसर नहीं मिला। शास्त्रदर्शी पण्डितोंके साथ उस दिन स्वामीजीके ऐसे विचार सुनकर उन सबोंने समझा कि स्वामीजीमें अद्भुत शक्ति प्रकट हुई है। उसी सभामें रामकृष्णानन्द, योगानन्द, निर्म्मलानन्द, तुरीयानन्द और शिवानन्द स्वामी सबही महाराज उपस्थित थे।

इस विचारमें स्वामीजी महाराजने सिद्धान्तपक्षको ग्रहण कियाथा और पण्डितोंने पूर्व्वपक्षवादको लियाथा। शिष्यको स्मरण होता है कि स्वामीजीने एक स्थान पर 'स्वस्तिके' परिवर्त्तनमें 'अस्तिका' प्रयोग कियाथा, इस कारण पण्डितजन हंस पड़े। इसी पर स्वामीजीने तत्क्षणात् कहा, "पण्डितानां दासोऽहंक्षन्तव्यमेतत् स्खलनं" अर्थात् मैं पण्डितोंका दास हूं, व्याकरण की इस त्रुटीको क्षमा कीजिये। स्वामीजीकी ऐसी दीनतासे पण्डित लोग मोहित होगये। बहुत देर तक वादानुवादके पश्चात् पण्डितोंने सिद्धान्तपक्षकी मीमांसाकोही यथेष्ट कहकर स्वीकार किया और स्वामीजीसे प्रीति सम्भाषण करके गमनकी ठहराई। आगन्तुओंमेंसे दोचार लोग पंडितोंके

पीछे पीछे गये और उनसे पूछा, " महाशयगण , आपने स्वामीजीको कैसा समझा ? " उनमेंसे जो वृद्ध पंडित था उसने उत्तर दिया, "व्याकरणमें गभीर बोध न होने परभी स्वामीजी शास्त्रोंके गूढ़ अर्थ समझने वाले हैं ; मीमांसा करनेमें उनके समान दूसरा कोई नहीं है और अपनी प्रतिभासे वादखण्डनमें अद्भुत पाण्डित्य उन्होंने दिखलाया।"

स्वामीजी पर उनके गुरु भाइयोंका सर्वदा कैसा अद्भुत प्रेम पाया जाता था ! जब पण्डितोंसे स्वामीजीका वादानुवाद हो रहाथा, तब शिष्यने स्वामीरामकृष्णानंद-जीको एकान्तमें बैठे जप करते हुए पाया । पण्डितोंके चले जानेपर शिष्यने इसका कारण पूछनेसे उत्तर पाया कि स्वामीजीके जय लाभ प्राप्तिके निमित्त वे गुरुमहाराज से प्रार्थना कर रहेथे ।

पण्डितजनोंके जानेके पश्चात् शिष्यने स्वामीजीसे सुना था कि वे पण्डितजन पूर्वमीमांसा शास्त्रोंमें सुपंडित थे। स्वामीजीने उत्तरमीमांसाका अवलम्बनकर ज्ञानकांड की श्रेष्ठता प्रतिपादन कीथी । और पण्डित लोगभी स्वामीजीके सिद्धान्तको स्वीकार करनेको बाध्य हुए थे ।

व्याकरणकी छोटी त्रुटि विषयमें पण्डितोंने स्वामी-

जीको जो विद्रूप कियाथा, उसपर स्वामीजीने कहाथा कि कई वर्ष संस्कृत भाषामें वार्त्तालाप न करनेसे ऐसा भ्रम हुआ था, इस कारण स्वामीजीने पण्डितों पर कुछ भी दोष नहीं डाला। परन्तु उन्होंने यहभी कहाथा कि पाश्चात्यदेशमें वाद (तर्क) के मूलविषयोंको छोड़कर भाषाकी छोटी मोटी भूलों पर ध्यानदेना बड़ी असभ्यता समझी जाती है। सभ्य समाज मूल विषयकाही ध्यान रखते हैं - भाषाका नहीं। परन्तु तेरे देशके सब कोई छिलके परही चिपटे रहते हैं और सार वस्तुका सन्धान ही नहीं लेते। इतना कहकर स्वामीजीने उस दिन शिष्यसे संस्कृतमें वार्त्तालाप आरम्भ किया; शिष्यनेभी येनकेन-प्रकारेण संस्कृतहीमें उत्तर दिया। शिष्यका भाषा प्रयोग ठीक नहोने परभी उसको उत्साहित करनेके लिये स्वामी-जीने प्रशंसा की। तबसे शिष्य स्वामीजीकी इच्छानुसार उनसे बीच बीचमें देवभाषाही में वार्त्तालाप करता था।

'सभ्यता' किसे कहते हैं - इसके उत्तरमें स्वामी जीने कहा कि जो समाज वा जो जाति आध्यात्मिक विषयमें जितनी आगे बढ़ी है, वह समाज या वह जाति उतनाही सभ्य कही जाती है। भांति भांतिके अस्त्र शस्त्र

तथा शिल्पगृह निर्म्माण करके इस जीवनके सुख व समृद्धिको बढ़ानेवाली जातिकोही सभ्य नहीं कह सकते। आजकलकी पाश्चात्य सभ्यता लोगोंमें दिन प्रतिदिन अभाव और 'हाय, हाय' कोही बढ़ा रही है। परन्तु भारतकी प्राचीन सभ्यता सर्व साधारणको आध्यात्मिक उन्नतिका मार्ग दिखलाकर यद्यपि उनके इस जीवनके अभावको बिल्कुल नष्ट न कर सकी तौभी उसको बहुत कम करनेमें निःसन्देह समर्थ हुई थी। इस युगमें इन दोनों सभ्यताओंका संयोग करानेके लियेही श्रीभगवान् रामकृष्णदेवजीने जन्म लियाथा। आजकल जैसे लोग कर्मतत्पर बनेंगे वैसाही उनको गभीर आध्यात्मिक ज्ञानकाभी लाभ करना होगा। इसी प्रकारसे भारतीय और पाश्चात्य सभ्यताओंका मेल होनेसे जगत्में नये युगका उदय होगा। इन बातोंको उस दिन स्वामीजीने विशेष करके समझाया। बातों बातोंमें ही पाश्चात्यदेशके एक विषयका स्वामीजीने उल्लेख किया था। वहांके लोग विचार करते हैं कि जो मनुष्य जितना धर्मपरायण होगा वह बाहरी चाल चलनमें भी बड़ा गंभीर बनेगा; जिन्हासे दूसरी बातोंका मजाक भी न करेगा। परन्तु मेरे मुंहसे उदार धर्म व्याख्यान सुनकर उस देशके धर्मप्रचारक

लोग जैसे अवाक् होते थे वैसेही वक्तृताके अन्तमें मुझको अपने बन्धुओंसे हास्य कौतुक करते देखकर अवाक् होते थे। कभी ऐसाभी हुआ है कि उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहाभी है, "स्वामीजी, धर्मप्रचारक बनकर, साधारण-जनकी नाईं ऐसा हास्यकौतुक करना उचित नहीं है। आपमें ऐसी चपलता कुछ शोभा नहीं देती।" इसके उत्तरमें मैं कहा करता था कि हम आनन्दकी सन्तान हैं हम क्यों रुष्ट (उदास) और दुःखी बने रहें। इस उत्तरको सुनकर वे इसके मर्मको समझते थे या नहीं इसकी मुझको शंका है।

उसदिन स्वामीजी महाराजने भावसमाधि और निर्विकल्प समाधि विषयको भी नाना प्रकारसे समझाया था। जहाँ तक सम्भव होसका उसका पुनः वर्णन करने की चेष्टा की जाती है।

अनुमान करो कि कोई ईश्वरकी साधना कर रहा है और हनुमानजीका जैसा भगवान् पर भक्तिभाव था, वैसेही भक्तिभावको उसने ग्रहण किया है। अब जितना यह भाव गाढ़ा होता है, उस साधकके चाल, ढंगमेंभी यहां तक कि शरीरके गठनमेंभी उतनाही वह भाव प्रग

होता । " जात्यान्तर परिणाम " इसी प्रकारसे होता है। किसी एक भावको ग्रहण करके साधन करनेके साथही साधक उसी प्रकार आकारमें बदल जाता है । किसी भावकी चरम अवस्थाको भाव समाधि कहा जाता है। और 'मैं शरीर नहीं हूं'; 'मन नहीं हूं', 'बुद्धिभी नहीं हूं' इस प्रकारसे 'नेति नेति' करते हुए, ज्ञानी साधक जब अपनी चैतन्य सत्ता पर अवस्थान करते हैं, तब उस अवस्थाको निर्विकल्प समाधि कहा जाता है । इस प्रकारके किसीएक भावको ग्रहण कर उसकी सिद्धि होनेमें या उसकी चरम अवस्था पर पहुंचनेमें कितनेही जन्मकी चेष्टाकी आवश्यकता होती है । भावराज्यके राजा हमारे श्रीठाकुरजी महाराज कोई अठारह भिन्न-भावोंसे सिद्धि लाभ कर चुके। ठाकुरजीमहाराज यह भी कहा करते थे कि यदि वह भावमुख पर न रहते तो उनकी स्थिति नहीं रहती ।

कथा प्रसंगमें शिष्यने उसदिन स्वामीजीसे पूछाथा " महाशय , उस देशमें आपका भोजन क्या था ? "

स्वामीजो । यह उस देशकी परिपाटीके ही अनुसार था। हम त्यागी सन्यासी हैं , हमारी किसी प्रकारसेभी

जात नहीं जाती।

हमारे देशमें किस प्रणालीसे कार्य्य आरम्भ करना उचित है इस प्रश्नके उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि मन्द्राज और कलकत्तेमें दो केन्द्र बनाकर सब प्रकारके लोक-कल्याण के लिये नये ढंगके साधु संन्यासी बनायेंगे और यह भी कहा कि प्राचीन रीतियोंके वृथा खण्डनसे समाजिक तथा देशकी उन्नति होनी सम्भव नहीं है।

सब कालोंमें प्राचीन रीतियोंको नये ढंगमें परिवर्त्तन करनेसे ही उन्नति हुई है। भारतमें प्राचीन युगमें भी धर्मप्रचारक लोगोंने इसी प्रकारसेही कार्य किया था। केवल बुद्धदेवजीके धर्मने ही प्राचीन रीति व नीतियोंका विध्वंस किया था। भारतसे उसके निर्म्मूल होजानेका यही कारण है।

शिष्यको स्मरण है कि स्वामीजी महाराज वार्त्तालाप करते हुए कहने लगे कि यदि किसी एकभी जीवमें ब्रह्मका विकाश हो तो सहस्रों मनुष्य उसी ज्योतिसे पथ देखकर आगे बढ़ते हैं। जो पुरुष ब्रह्मज्ञ होते हैं वही केवल लोक गुरु बन सकते हैं। यह बात शास्त्रों और युक्तिसे प्रमाणित होती है। स्वार्थयुक्त ब्राह्मणों ने जो कुलगुरु

प्रथाका प्रचार किया है वह वेद और शास्त्रोंके विरुद्ध है। इसी कारणसे ही साधना करने परभी लोग सिद्ध या ब्रह्मज्ञ नहीं होते। भगवान् श्रीरामकृष्णजी महाराज धर्म्मकी यह सब ग्लानि दूर करनेको शरीर धारण करके वर्त्तमान युगमें इस संसारमें अवतीर्ण हुए थे। उनके प्रदर्शित सार्वभौमिक मतके प्रचार हानेसे ही जगत् और जीवका मंगल होगा। इनसे पूर्व सब धर्मोंको समन्वय करने वाले ऐसे अद्भुत आचार्य्यने बहुत शताब्दियोंसे भारतवर्षमें जन्म नहीं लिया था।

इस बातपर स्वामीजीके एक गुरुभाईने उनसे पूछा, "महाशय, पाश्चात्य देशमें आपने सबके सामने ठाकुरजी महाराजको अवतार कहकर क्यों नहीं प्रचार किया।"

स्वामीजी। वे दर्शन और विज्ञान शास्त्रों पर बहुतही अभिमान करते हैं। इसी कारण युक्ति, विचार, दर्शन, और विज्ञानकी सहायतासे जब तक उनके ज्ञानका अहंकार न तोड़ा जावे तब तक किसी विषयकी वहाँ प्रतिष्ठा नहीं होती। तर्क विचारसे उनका कोई पता न लगने पर तत्त्वके निमित्त यथार्थ उत्सुक होकर, जब वे

हमारे पास आते थे तब मैं उनसे ठाकुरजी महाराजकी बात किया करता था। यदि प्रथमसे ही उनसे अवतार-वादका प्रसंग करता तो वे बोल उठते " तुम नयी बात क्या सिखाते हो— हमारे प्रभु ईशा भी तो हैं। "

तीन चार घण्टेतक ऐसे आनन्दसे समय बिताकर अन्यान्य लोगोंके साथ शिष्य कलकत्तेको लौटा।

चतुर्थ वल्ली ।

स्थान—श्रीयुत नवगोपालजीका भवन
रामकृष्णपुर, हावड़ा ।

वर्ष—१८९७ (मार्च)

विषय—नवगोपालजीके भवनमें ठाकुरजी महाराजकी प्रतिष्ठा—स्वामीजीकी दीनता—नवगोपालजीका सपरिवार श्रीरामकृष्णमें लीनत्व—श्रीरामकृष्णजीका प्रणाम मन्त्र ।

श्रीश्रीरामकृष्ण महाराजजीके प्रेमी भक्त श्रीयुत नवगोपाल घोषजीने भागीरथी गंगाके पश्चिमी तटपर हावड़ेके अन्तर्गत रामकृष्णपुरमें एक नई हवेली बनायी । इसके लिये स्थान मोललेते समय, इस स्थानका नाम रामकृष्णपुर सुनकर, विशेष आनन्दित हुए थे; क्योंकि इस गाँवके नामकी उनके इष्टदेवके नामके साथ एकता थी । मकान बनानेके थोड़ेही दिन पश्चात् स्वामी विवेकानन्दजी प्रथमवार विलायतसे कलकत्तेको लौटकर आयेथे । घोषजी और उनकी स्त्रीकी बड़ी इच्छा थी कि अपने मकानमें स्वामीजीसे श्रीरामकृष्णमूर्तिकी स्थापना करावें । कुछ दिन पहिले, घोषजीने मठमें जाकर स्वामी-

जीसे अपनी इच्छा प्रकाश कीथी और स्वामीजीने भी स्वीकार करलिया था। इस कारण नवगोपालजीके गृहमें उत्सव है। मठके संन्यासी और ठाकुरजी महाराजके गृहस्थी भक्त सब आज बड़े सादर निमन्त्रित हुए हैं। मकानभी आज ध्वजा और पतकाओंसे सुशोभित है। फाटक पर सामने पूर्णघट रक्खा गया है, कदली स्तम्भ रोपे गये हैं, देवदारके पत्तोंके तोरण बनाये हैं और आमके पत्ते व पुष्पमालाकी वन्दनवार बाँधी गई हैं। रामकृष्णपुर ग्राम आज 'जय रामकृष्ण' की ध्वनीसे गुंज रहा है।

मठसे संन्यासी और बालब्रह्मचारीगण स्वामीजी-महाराजको साथ लेकर तीन नांवोंको भाड़ा करके और उन पर बैठ रामकृष्णपुरके घाट पर उपस्थित हुए। स्वामीजीके शरीर पर एक गेरुवा वस्त्र, शिर पर पगड़ी थी और पांव नंगे थे। रामकृष्णपुर घाटसे जिस मार्ग हो कर स्वामीजी महाराज नवगोपालजीके घरको जानेवाले थे, उसके दोनों ओर सहस्रों मनुष्य उनके दर्शनके निमित्त खड़े हो गये। नावसे घाट पर उतरतेही स्वामीजी महाराज एक भजन गाने लगे जिसका आशय

यह था—"वह कौन है जो दरिद्री ब्राह्मणीके गोदमें चारो ओर उजाला करके सो रहा है ? वह दिगम्बर कौन है, जिसने झोंपड़ीमें जन्म लिया है" इत्यादि। इस प्रकार गान करते और स्वयं मृदंग बजाते हुए आगे बढ़ने लगे। इसी अवसरमें दो तीन और भी मृदंग बजने लगे, साथ साथ सब भक्तजन एकही स्वरसे भजन गाते हुए उनके पीछे २ चलने लगे। उनके उद्दाम नृत्यने और मृदंगकी ध्वनीसे पथ व घाट सब गूंज उठे। जाते समय यह मण्डली कुछ देर डाक्टर रामलालजीके मकानके सामने खड़ी हुई। डाक्टर महाशयभी बड़ी व्यग्रतासे बाहर निकल आए और मण्डलीकेसाथ चलने लगे। सब मनुष्योंका यह विचारथा कि स्वामीजी बड़ी सजधज व आड़म्बरसे आवेंगे। परन्तु साधारण साधुके समान वस्त्रधारण किये हुए और नंगे पैर मृदंग बजाते हुए उनको जाते देखकर बहुतसे मनुष्य उनको पहिचान ही न सके। जब औरोंसे पूंछकर स्वामीजीका परिचय पाया तब वे कहने लगे, "क्या यही विश्वविजयी स्वामी विवेकानन्दजी हैं ? स्वामीजीके इस अमानुषी दीनभाव को देखकर सब एकस्वरसे प्रशंसा करने और जय-

श्रीरामकृष्णकी ध्वनीसे मार्गको गुंजाने लगे।

गृहस्थी आदर्शपुरुष नवगोपालजीका मन आनन्दसे पूर्ण है और वह सांगोपांग ठाकुरजी महाराजकी सेवाके लिये बड़ी सामग्री और चारों ओर दौड़ धूप कररहे हैं। कभी कभी प्रेमानन्द मग्न होकर "जयराम जयराम" शब्दका उच्चारण कर रहे हैं। मण्डलीके उनके द्वारपर पहुंचतेही, भीतरसे शंखध्वनी होने लगी तथा घड़ियाल बजने लगे। स्वामीजी महाराजने मृदंगको उतारके बैठक में किंचित् विश्राम किया। तत्पश्चात् ठाकुरघर देखनेके लिये ऊपर छिखनेपर गये। यह ठाकुरघर श्वेतपाषाणका था। बीचमें सिंहासनके ऊपर गुरुमहाराजकी पोरसिन (चिनी) की बनी हुई मूर्त्ति विराजमान थी। हिन्दुओंमें देव देवीके पूजनके लिये जिन सामग्रियोंकी आवश्यकता होती है,उनके उपार्जन करनेमें कोईभी त्रुटि नहीं पाई गई। स्वामीजी निरीक्षण करके अति प्रसन्न हुए।

नवगोपालजीकी स्त्रीने वधुओं सहित, स्वामीजी को साष्टाँग प्रणाम किया और पंखा झलने लगीं। स्वामीजीसे सब सामग्रीकी प्रशंसा सुनकर गृहस्वामिनी उनसे बोली, "हमारी क्या शक्ति है कि गुरुजीकी सेवा

का अधिकार हमको प्राप्त हो ? गृह छोटा, और धन सामान्य है। आज कृपा करके गुरूजीकी प्रतिष्ठा कर हमको कृतार्थ कीजिये।

स्वामीजीने इसके उत्तरमें हास्यभावसे कहा " तुम्हारे ठाकुरजी महाराज तो किसी कालमें भी ऐसे श्वेत-पत्थरके मन्दिरमें १४ पीढ़ीसे नहीं वसे। उन्होंने तो गांवके फूसकी झोंपड़ीमें जन्म लिया और येनकेन प्रकारेण अपने दिन व्यतीत किये। ऐसी उत्तम सेवा पर प्रसन्न होकर यदि यहां न वसंगे तो फिर कहां ? स्वामीजी महाराजकी वात पर सव हंसने लगे। अव विभूतिभूषांग स्वामीज़ी साक्षात् महादेवजीके समान पुजारीके आसन पर वैठकर, ठाकुरजी महाराजका आवाहन करने लगे।

स्वामी प्रकाशानन्दजी स्वामीजी महाराजके निकट वैठकर मन्त्रादि कहने लगे। क्रमशः पूजा सर्व्वांग सम्पूर्ण हुई और नीराजनका शंख, घन्टा वजा। स्वामी प्रकाशानन्दजीही ने इसका सम्पादन किया।

नीराजन होनेपर स्वामीजी महाराजने उसी पूजा स्थानमें विराजे हुयं ही श्रीरामकृष्णदेवकी एक प्रणाम मन्त्रकी मौखिक रचना की।

" स्थापकाय च धर्म्मस्य सर्व्वधर्म्मस्वरूपिणे
अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः " ॥

सब लोगोंने इस श्लोकको पढ़कर ठाकुरजीको प्रणाम किया। फिर शिष्यने ठाकुरजीका एक स्तोत्र पाठ किया। इसी प्रकार पूजा समाप्त हुई । इसके पश्चात् नीचे एकत्रित भक्तमण्डलीने कुछ भोजन पान करके गान आरम्भ कर दिया। स्वामीजी महाराज ऊपरही रहे गृहकी स्त्रियां स्वामीजीको प्रणाम करके धर्म्मविषयों पर उनसे नाना प्रश्न करने और स्वामीजीका आशीर्वाद ग्रहण करने लगीं।

शिष्य इस परिवारको रामकृष्णमें लीन देख कर निर्वाक् खड़ा रहा। और इनके सत्संगसे अपना मनुष्य जन्म सफल मानने लगा। इसके अनन्तर भक्तोंने प्रसाद पाकर आचमन किया और नीचे आकर थोड़ी देरके विश्राम करने लगे। सायंकालको वे छोटे २ दलोंमें विभक्त होकर अपने अपने घरको लौटे । शिष्यभी स्वामीजीके साथ गाड़ी पर रामकृष्णपुरके घाट तक गये। वहांसे नाव पर बैठ बहुत आनन्दसे नाना प्रकारकी वार्त्तालाप करते हुये बागबाज़ारकी ओर चले।

पञ्चम वल्ली।

स्थान—दक्षिणेश्वर कालीवाड़ी व आलम बाजारके मठ।
वर्ष—१८९७ (मार्च)

विषय—दक्षिणेश्वरमें गुरुजी महाराजका अन्तिम जन्मोत्सव—धर्म्मराज्यमें उत्सव तथा पर्वियोंकी आवश्यकता—अधिकारियोंके भेद अनुसार सब प्रकारके चलित व्यवहारोंकी आवश्यकता—कोई किसी नवीन सम्प्रदायका गठन न करनाहो स्वामीजीके धर्म्म-प्रचारका उद्देश।

जब स्वामीजी महाराज प्रथमवार इंगलैण्डसे लौटे, तब आलमबाज़ारमें रामकृष्ण मठ था। जिस भवनमें मठकी स्थिती थी उसे लोग "भूतभवन" कहतेथे। परन्तु वहां संन्यासियोंके सत्संगसे यह भूतभवन राम-कृष्ण तीर्थमें परिणत होगया। वहांके साधन, भजन, जप तपस्या, शास्त्रप्रसंग और नाम कीर्त्तनका क्या ठिकाना था। कलकत्तेमें राजोंके समान सन्मान प्राप्त होने पर भी स्वामीजी महाराज उसी टूटे फूटे मठमें ही रहने लगे। कलकत्ता निवासियोंने उनपर श्रद्धान्वित होकर कलकत्तेकी उत्तरी दिशा काशीपुरमें गोपाललाल

शीलके बागमें एक स्थान एक मासके लिये निर्द्धारित कियाथा, वहांभी स्वामीजी कभी कभी रहकर दर्शनोत्सुक लोगोंसे धर्म्मप्रसंग करके उनके मनकी इच्छा पूण करने लगे।

श्रीरामकृष्णजीका जन्मोत्सव अब निकट है। इस वर्ष दक्षिणेश्वर रानी रासमणिजीकी कालीवाड़ीमें उत्सवके लिये भारी सामग्री हो रही है। प्रत्येक धर्म पिपासु मनुष्यके आनन्द और उत्साहकी कोई सीमा नहीं है, रामकृष्णसेवकोंका तो कहना ही क्या है। इसका विशेष कारण यह है कि विश्वविजयी स्वामीजी श्रीरामकृष्णजीके भविष्यत् कथनको सफल करके इस वर्ष विलायतसे लौट आये हैं। उनके गुरु भाई सब आज उनसे मिल कर श्रीरामकृष्णजीके सत्संगका आनन्द अनुभव कर रहे हैं। कालीजीके मन्दिरके दक्षिण दिशामें प्रसाद बन रहा है। स्वामीजी कुछ गुरु भाइयोंको अपने साथ लेकर ६। १० बजेके लगभग आपहुंचे। उनके पैर नंगे थे और शिर पर गेरुए रंगकी पगड़ी थी। उनकी आनन्दित मूर्तिके दर्शन, चरण कमलोंको स्पर्शन करके और उन-

श्रीमुखसे जलती हुई अग्नि-शिखाके समान उपदेशोंको सुनकर कृतार्थ होनेके लिये लोग चारों ओरसे भागने लगे। इसी कारण आज स्वामीजीके विश्रामके लिये तनिक भी अवसर नहीं। माता कालीके मन्दिरके सामने सहस्रों मनुष्य एकत्रित हैं। स्वामीजीने जगन्माताको भूमिष्ट होकर प्रणाम किया और उनके साथ ही साथ सहस्रों और मनुष्योंने भी उन्हें प्रमान वन्दना की। तत्पश्चात् श्रीराधाकान्तजीकी मूर्तिको प्रणाम करके गुरु महाराजजीके मन्दिरमें आये। वहां ऐसी भीड़ हुई कि तिलभर स्थान शेष न रहा। बागीचे-वाड़ीकी चारों दिशाएं 'जयरामकृष्ण' शब्दसे भर गई। होरमिलर (Hoarmiller) कम्पनीका जहाज दर्शकोंको आज अपनी गोदमें बैठाकर बराबर कलकत्तेसे ला रहा है। नौबत आदिके मधुर स्वरसे तुरन्ती गंगा नृत्य कर रही हैं। मानो उत्साह, आकाङ्क्षा, धर्मपिपासा और अनुराग साक्षात् देहधारण कर श्रीरामकृष्णजीके पार्श्वगण रूपसे चारों ओर विराजमान हैं। इस वर्षके उत्सवका अनुमान ही हो सकता है, भाषामें इतनी शक्ति कहाँ कि वर्णन करे।

स्वामीजीके साथ आयी हुई दो अंगरेज रमणियाँ उत्सवमें उपस्थित हैं। उनसे शिष्य अभीतक परिचित न था। स्वामीजी उनको साथ लेकर पवित्र पंचवटी और बिल्ववृक्षको दिखला रहे थे। स्वामीजीसे शिष्यका विशेष परिचय न होनेपर भी उसने उनके पीछे २ जाकर उत्सव विषयक स्वरचित एक संस्कृत स्तोत्र उनके हाथमें दिया। स्वामीजी भी उसे पढ़ते हुए पंचवटीकी ओर चले। चलते २ शिष्यकी ओर देखकर बोले "अच्छा लिखा है, तुम और भी लिखना"।

पंचवटीके एक ओर श्रीगुरुजीके गृहस्थी भक्तगण एकत्रित हैं। गिरीशचन्द्र घोषजी पंचवटीकी उत्तरी दिशाको मुह किये बैठे हैं। और उनको घेरे बहुतसे भक्त श्रीरामकृष्णजीके गुणोंके व्याख्यान व कथा प्रसंगमें मग्न हुये बैठे हैं। इसी अवसरमें बहुतसे मनुष्योंके साथ साथ स्वामीजी गिरीश चन्द्रजीके पास उपस्थित हुए और "अरे! घोषजी यहां हैं!" यह कहकर उनको प्रणाम किया। गिरीश बाबूको पिछली बातोंका स्मरण कराकर स्वामीजी बोले, "घोषजी वह भी एक समय था और अब भी एक समय है।" गिरीशबाबू स्वामीजीसे सहमत हो

बोले, "हां बहुत ठीक; किन्तु अभी तक मन चाहता है कि और भी देखूं।" दोनोंमें ऐसी जो वार्त्तालाप हुई उसका गूढ़ अर्थ ग्रहण करनेमें और कोई समर्थ न हुआ। कुछ देर वार्त्तालाप कर स्वामीजी पंचवटीकी उत्तरी दिशामें जो बिल्ववृक्ष था वहां चले गये। स्वामीजीके चले जाने पर गिरीश बाबूने उपस्थित भक्त मण्डलीको सम्बोधन करके कहा, "एक दिन हरमोहन मित्रने संवाद पत्रमें पढ़कर मुझसे कहाथा कि अमरीकामें स्वामीजीके नाम पर निन्दा प्रकाश की गई है। मैंने तब उससे कहाथा यदि मैं अपनी आंखोंसे नरेन्द्रको कोई बुरा काम करते देखूं तो यह अनुमान करूंगा कि मेरी आंखोंमें विकार उत्पन्न हुआ है और उनको निकाल दूंगा। वे (नरेन्द्रादि) सूर्योदयसे पहले निकाले हुए माखनके सदृश स्वच्छ और निर्मल हैं; क्या संसाररूपी पानीमें वे फिर घुल सकते हैं? जो उनमें दोष निकालेगा वह नरकका भागी होगा।" ऐसी वार्त्तालाप हो रही थी कि इतनेमें स्वामी निरंजनानन्दजी गिरीश बाबूके पास उपस्थित हुए और एक बड़े नारियलमें चिलम पीने लगे। और कोलम्बोसे कलकत्ते तक लौटनेकी घटना—जिस प्रकार लोगोंने स्वामीजीका आदर

और सत्कार किया और स्वामीजीने अपनी वक्तृतामें उनको जैसा अनमोल उपदेश दिया-इन बातोंका कुछ २ वर्णन करने लगे। गिरिश बाबू इन बातोंको सुनकर भौंचक्क होकर बैठे रहे।

उस दिन दक्षिणेश्वरके देवालयमें एक ऐसा दिव्य रूपी प्रवाह बह रहा था। अब यह विराट जनसंघ स्वामीजीकी वक्तृताको सुननेके लिये उद्ग्रीव होकर खड़ा होगया। परन्तु अनेक चेष्टा करने पर भी स्वामीजी मनुष्योंके कोलाहलकी अपेक्षा ऊंचे स्वरसे वक्तृता न दे सके। लाचार होकर इस उद्यमका परित्याग किया और दोनों अंगरेज़ महिलाओंको साथ लेकर श्रीगुरु-महाराजजीका साधन स्थान दिखाने व उनके बड़े बड़े सांगोपांग भक्तोंसे परिचय कराने लगे। धर्मशिक्षाके निमित्त यह दो अंगरेज़ स्त्रियां बहुत दूरसे स्वामीजीके साथ आई हैं यह जानकर किसी किसीको बहुत आश्चर्य हुआ और वे स्वामीजीकी अद्भुत शक्ति पर वार्त्तालाप करने लगे।

तीसरे पहर ३ बजे स्वामीजीने शिष्यसे कहा "एक गाड़ी लाओ, मठ को जाना है"। आलमबाज़ार तकके

लिये दो आने पर भाड़ा कर एक गाड़ी शिष्य साथ ले आया। स्वामीजी उस पर बैठ स्वामी निरंजनानन्दजी और शिष्यको साथ ले बड़े आनन्दसे मठको चले। जाते जाते शिष्यसे कहने लगे जिन भावोंको अपने जीवन या कार्यमें स्वयम् सफलता प्राप्त न की हो, उन भावोंकी केवल चर्चा मात्रसे क्या होता है? यही सब उत्सवोंका भी अभिप्राय है कि इन्हींसे तो सर्व साधारणमें सद्भाव धीरे २ फैलेगा । हिन्दुओंमें बारह महीने कितनी ही पर्वियां होती हैं जिनका उद्देश यही है कि धर्ममें जितने बड़े २ भाव हैं उनको सर्वसाधारणोंमें फैलावें । परन्तु इसमें एक दोष भी है। साधारण लोग इनका यथार्थ भाव न जान उत्सवोंमें ही मग्न हो जाते हैं और उनकी पूर्ति होने पर कुछ लाभ न उठा ज्योंके त्यों बने रहते हैं। इस कारण ये उत्सव धर्मके बाहरी वस्त्रके समान धर्मके यथार्थ भावोंको ढांके रहते हैं।

परन्तु इनमेंसे कुछ लोग "धर्म व आत्मा क्या है" यह न जानने परभी इनसे यथार्थ धर्म जाननेकी चेष्टा करेंगे। जो आज श्रीगुरुमहाराजजीका जन्मोत्सव हुआ है इसमें जो मनुष्य आयेथे उनके हृदयमें श्रीगुरुमहाराजके विषयमें

जाननेकी, कि इ.. कौन थे जिनके नामसे इतने जन एकत्रित हुए औ. ..हीं नाम पर क्यों ये लोग आये हैं, इच्छा अवश्य .... होगी। और जिनके मनमें यह भाव भी न हुआ .. . ..गी एक बार भजन सुनने व प्रसाद पानेके निमित्त भी आवेंगे, तो भी श्रीगुरुजीके भक्तोंके दर्शन अव.श होंगे जिनसे उनका उपकार ही होगा। न कि अप्य. .

शिष्य। यदि .. ..सद व भजनगानको ही धर्मका सार समझ . ..ा वे भी धर्ममार्गमें और आगे बढ़ सकगे ? इस. ..ा जैसे षष्ठीपूजा, मंगल-चण्डीपूजा प्रभृति नित्य नैमित्तिक होगई है वैसेही येभी हो जावेंगे। इस प्रकार पूजा बहुत लोग मृत्यु कालतक करते रहते हैं, परन्तु मैंने तो ऐसा कोई भी नहीं देखा जो ऐसे पूजन करते ७ अज्ञाज्ञ होगया हो।

स्वामीजी। क्यों? इस भारतमें जितने धर्मवीरोंने जन्मलिया वे सब इन्हीं पूजाओंके आश्रयसे आगे बढ़े और ऊंची अवस्थाको प्राप्तहुए। इन्हीं पूजाओंका आश्रय लेकर साधन करते हुए जब वे आत्मदर्शन करते हैं तब इनपर उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता। परन्तु लोक

संस्थितिके लिये अवतार समान महापुरुषगण भी इन सबोंको मानते हैं

शिष्य। हां, मनुष्यमात्रके दिखावेको ऐसा मान सकते हैं। किन्तु जब आत्मज्ञ पुरुषोंको यह संसार ही इन्द्र-जालवत् मिथ्या प्रतीत होता है तब क्या वे इन सब बाहरी लौकिक व्यवहारोंको सत्यभावसे मान सकते हैं?

स्वामीजी। क्यों नहीं? जिनको हम सत्य समझते हैं वेभी तो (Relative) देश काल व पात्रके अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। इसी कारण अधिकारियोंके भेदानुसार इन सब व्यवहारोंका प्रयोजन है। जैसा कि श्री-गुरु महाराजजी कहा करते थे, "माता किसी सन्तानको पोलाव व कालिया पकाकर देती है और किसीको साबु-दाना देती हैं"। इसी प्रकार यहांभी समझना चाहिये।

अब इन उत्तरोंको सुन और समझ शिष्य चुप होगया। इसी अवसरमें गाड़ीभी आलमबाज़ारके मठमें आपहुंची। शिष्य गाड़ीका किराया देकर स्वामीजीके साथ मठमें गया और स्वामीजीके पीनेके निमित्त जल ले आया। स्वामीजीने जलपान कर अपना कुर्ता उतार डाला और पृथ्वी पर जो दरी बिछी थी उस पर अर्द्ध

शयन करते हुये विश्राम करने लगे। स्वामी निरंजनान्दजी जो निकटही विराजमान थे बोले: "उत्सवमें ऐसी भीड़ पूर्व कभी नहीं हुई, मानो कुल कलकत्ता यहां टूट पड़ा है।"

स्वामीजी। इसमें आश्चर्य ही क्या है, आगे जाने क्या क्या होगा!

शिष्य। प्रत्येक धर्म सम्प्रदायमें यह पाया जाता है कि किसी न किसी प्रकारका दिखलावटी उत्सव व आमोद मनाया जाता है, परन्तु कोई भी किसीसे नहीं मिलता। ऐसे उदार मोहम्मदीय धर्ममें भी शीया, सुन्नीयों में दंगा तथा फ़िसाद होता है। मैंने यह ढाका शहरमें देखा है।

स्वामीजी। सम्प्रदाय होने पर ही थोड़ा बहुत ऐसा अवश्य होगा। परन्तु क्या तू यहांके भावको जानता है? हमतो कोई भी सम्प्रदायी नहीं। हमारे गुरु महाराजजीने इसीको दिखलानेके निमित्त जन्म लिया था। वे सब कुछ मानते थे, परन्तु यह भी कहते थे कि ब्रह्मज्ञानकी दृष्टिसे यह सब मिथ्या माया ही है।

शिष्य। महाराज, आपकी बात समझमें नहीं आती।

मेरे मनमें कभी कभी ऐसा अनुमान होता है कि आप भी ऐसे उत्सवोंका प्रचार करके गुरुजीके नामसे एक नई सम्प्रदायको जन्म दे रहे हैं। मैंने पूज्यपाद नाग महाशय से सुना है कि गुरुजी किसीभी सम्प्रदायमें नहीं थे। शाक्त, वैष्णव, ब्रह्मज्ञानी, मुसलमान, क्रीस्तान इन सब ही धर्मका वे बहुत मान करते थे।

स्वामीजी। तूने कैसे विचारा कि हम सब मतोंका उसी प्रकार मान नहीं करते ?

यह कहकर स्वामीजी हंसकर स्वामी निरंजनान्दजी से बोले, "अरे! यह गंवार कहता क्या है ?"

शिष्य। कृपा करके इस बातको तो मुझे समझा दीजिये।

स्वामीजी। तूने तो मेरी वक्तृताएं पढ़ी है। क्या कहीं भी मैंने गुरुजीका नाम लिया है? मैंने तो जगत्में केवल उपनिषदोंका ही धर्म प्रचार किया है।

शिष्य। महाराज यह तो ठीक है। परन्तु आपसे परिचय होने पर मैं देखता हूं कि आप रामकृष्णमें लीन हैं। यदि आपने गुरुजीको भगवान् जाना है तो क्यों नहीं लोगोंसे आप यह स्पष्ट कह देते ?

स्वामीजी। मैंने जो अनुभव किया है वही बतलाया है। यदि तूने वेदान्तके अद्वैत मतको ही ठीक माना है क्यों नहीं लोगोंको भी यह समझा देता ?

शिष्य। प्रथम मैं स्वयं अनुभव करूंगा तब ही तो समझाऊंगा। मैंने तो केवल इस मतको पढ़ा ही है।

स्वामीजी। तब पहिले तू इसकी अनुभूति करले। फिर लोगोंको समझा सकेगा। वर्तमानमें तो प्रत्येक मनुष्य एक एक मत पर विश्वास करके चल रहा है इसमें तो तू कुछ कहही नहीं सकता। क्योंकि तू भी तो अभी एक मत पर ही विश्वास करके चल रहा है।

शिष्य। हां महाराज, यह सत्य है कि मैं भी एक मतपर विश्वास करके चल रहा हूं। किन्तु मैं इसका प्रमाण शास्त्र देता हूं। मैं शास्त्रके विरोधी मत को नहीं मानता।

स्वामीजी। शास्त्रसे तेरा क्या अर्थ है ? यदि उपनिषदोंको प्रमाण माना जाय तो क्यों बाइबेल, जेन्दावस्ता, न माने जांय ?

शिष्य। यदि इन पुस्तकों को प्रमाण स्वीकार करें तो वेदके समान वे प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। और वेदमें

जैसा आत्मतत्त्वसमाधान है वैसा और किसीमें नहीं।

स्वामीजी। अच्छा तेरी बात मैंने स्वीकार की, परन्तु वेदके अतिरिक्त और कहींभी सत्य नहीं है यह कहनेका तेरा क्या अधिकार है?

शिष्य। जी महाराज, वेदके अतिरिक्त और सब धर्म ग्रन्थोंमें भी सत्य हो सकता है। इसके विरुद्धमें कुछ नहीं कहता किन्तु मैं तो उपनिषद्के मतको ही मानूंगा इसमें मेरा परम विश्वास है।

स्वामीजी। अवश्य मानो, परन्तु यदि किसीका और किसी मतपर "परम" विश्वास हो तो उसको उसी विश्वास पर चलने दो। अंतमें देखोगे तुम और वह एक ही स्थानपर पहुंचोगे। महिम्न स्तोत्रमें तूने क्या नहीं पढ़ा है "त्वमसि पयसामर्णव इव"?

षष्ठ वल्ली।

स्थान—आलम बाज़ार मठ।

वर्ष—(१८९७। मई)।

विषय—स्वामीजीका शिष्यको दीक्षादान—दीक्षासे पूर्व प्रश्न—
जगत्‌की उत्पत्तिके विषयमें वेदोंका मत—जिससे अपनी मोक्ष और
जगत्‌के कल्याणचिन्तनमें मनको सर्वदा मग्न रखसके वही दीक्षा—
अहंभावसे पाप पुण्यकी उत्पत्ति—आत्माका प्रकाश छोटेसे "अहं"
के त्याग ही में—ममके नाशमें ही यथार्थ अहंभावका प्रकाश,
और वास्तवमें वही अहंका स्वरूप— "कालेनात्मनि विन्दति"।

स्वामीजी दार्जिलिंगसे कलकत्तेको लौटे हैं और आलमबाज़ार मठमें ही ठहरे हैं। गङ्गाजीके किनारेमें किसी स्थान पर मठको हटानेका प्रबन्ध हो रहा है। आजकल उनके पास शिष्यका प्रतिदिन गमनागमन रहता है, और कभी रात्रिमें भी वहीं रह जाता है। जीवनके प्रथम पथप्रदर्शक श्रीनाग महाशयने शिष्यको गुरुदीक्षा नहीं दीथी। दीक्षा विषयमें वार्तालाप होतेही वे स्वामीजीका नाम लेकर कहते थे, "वे (स्वामीजी) ही जगत्‌के

रहना चाहिये--इन बातोंकी भी चर्चा करनेलगे। तत्पश्चात् शिष्यके हृदयकी परीक्षा करनेके निमित्त कुछ प्रश्न करने लगे, "मैं जब ही जिस कामकी आज्ञा करूंगा क्या तू तुरन्त उसकी आज्ञापालन करनेकी यथा शक्ति चेष्टा करेगा ? तेरा मंगल समझकर यदि मैं तुझको गंगाजीमें डूबकर मरनेकी या छतसे कूदनेकी आज्ञा दूं क्या तू बिना विचारे इसका पालन करेगा ? अब भी यह तू विचार कर ले। बिना विचारे गुरु करनेको प्रस्तुत न हो।" शिष्यके मनमें कैसा विश्वास है यह जाननेको ऐसेही कुछ प्रश्न करने लगे। शिष्य भी शिर झुकाए "पालन करूंगा" यह कहकर प्रत्येक प्रश्नका उत्तर देने लगा।

स्वामीजी कहने लगे—" वही यथार्थ गुरु है ज इस मायारूपी संसारके पार ले जाता है; जो कृपाकरके सब मानसिक आधिव्याधि विनष्ट करता है। पूर्वकालमें शिष्यगण समित्पाणि होकर गुरुके आश्रममें जाया करते थे। गुरु उनको अधिकारी समझने पर दीक्षादान करके वेद पढाते थे और तन-मन-वाक्य-दण्डरूप व्रतकी चिन्ह स्वरूप त्रिरावृत्त मौंजिमेखला उसके कमरमें बांध

देते थे। उससे शिष्यगण अपनी कौपीनोंको तानकर बांधते थे। उस मौंजिमेखलाके स्थान पर अब यज्ञसूत्र या जनेऊ पहिरनेकी रीति निकली है।

शिष्य। हम सूतके जो उपवीत धारण करते हैं, क्या यह वैदिक प्रथा नहीं है?

स्वामीजी। वेदमें कहीं सूतके उपवीतका प्रसंग नहीं है। स्मार्त्त पण्डित रघुनन्दनने भी लिखा है—"अस्मिन्नेव समये यज्ञसूत्रं परिधापयेत्"। ऐसा उपवीतका प्रसंग गोभिलके गृह्यसूत्रमें भी नहीं है। गुरुके पास इस वैदिकसंस्कारको ही शास्त्रोंमें उपनयन कहा गया है। परन्तु आजकल देशकी कैसी दुरवस्था हुई है! शास्त्रपथ छोड़कर केवल कुछ देशाचार, लोकाचार और स्त्री-आचारसे सब देश भरा हुआ है। इसी कारण मैं कहता हूं कि जैसा प्राचीनकालमें था वैसाही काम शास्त्र पन्थके अनुसार करते जाओ। स्वयं श्रद्धावान् होकर अपने देश पर भी श्रद्धा आनयन करो। अपने हृदयमें नचिकेताके समान श्रद्धा लाओ। नचिकेताके समान यमलोकमें चले जाओ। आत्मतत्त्वके जाननेके लिये, आत्माके उद्धारके लिये, इस प्रहेलिकारूपी जन्ममृत्युकी

पड़ थी।

यथार्थ मीमांसाके लिये, यदि यमके द्वार पर जाके सत्यका लाभ करे, तो निर्भीक हृदयसे वहां जाना उचित है। भयही मृत्यु है। भयके पार होना चाहिये। आजसे भय-शून्य हो जाओ। थोड़ीसी हड्डी व मांसका बोझ लिये फिरनेसे क्या होगा? ईश्वरके निमित्त सर्वस्वदानरूप मन्त्रमें दीक्षा ग्रहण करके दधीचि मुनिने [illegible]ओंके निमित्त अपनी हड्डी व मांस दान करी। शास्त्रमें लिखा है कि जो [illegible] हैं, जो ज्ञानवान हैं, जो अन्यको भवसागरके पार ले जानेके समर्थ हैं, वे ही यथार्थ गुरु हैं। उनके दर्शन पाने ही उनसे दीक्षित होना उचित है "[illegible] ।" आज कल वह रीति कहां पहुंची है? देखो—"अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।"

अब ९ बजेका समय है। स्वामीजी आज स्नानके निमित्त गंगाजीको नहीं गये, मठमें ही स्नान किया। स्नानके पश्चात् एक नये गेरुवे रंगके वस्त्रको परिधान कर मृदुपदसे पूजा घरमें प्रवेश करके आसन पर उप-वेशन किया। शिष्यने वहां प्रवेश नहीं किया परन्तु बाहर ही प्रतीक्षा करने लगा। 'स्वामीजी जब बुलायेंगे तबही भीतर जाऊंगा'। अब स्वामीजी ध्यानस्थ हुये—मुक्त-

पद्मासन, ईषन्मुद्रित नयनसे ऐसा अनुमान होता था कि तन-मन-प्राण सब स्पन्दहीन हो गया है । ध्यानके अन्तमें स्वामीजीने "बच्चा, इधर आओ" कहकर बुलाया । शिष्य स्वामीजीके स्नेहयुक्त आह्वानसे मुग्ध होकर यन्त्रवत् पूजा घरमें प्रविष्ट हुआ । वहां प्रवेश करते ही स्वामीजीने शिष्यको आदेश किया "द्वार बन्द करो" । द्वारके बन्द करने पर स्वामीजीने कहा "मेरे वाम पार्श्वमें स्थिर होकर बैठो" स्वामीजीके आदेशको शिरोधार्य करके शिष्य आसन पर बैठा । उस समय कैसे एक अनिर्वचनीय, अपूर्वभावसे उसका हृदय थर २ कांप रहा था । अनन्तर स्वामीजीने अपने कमलरूपी हस्तको शिष्यके मस्तक पर रखकर शिष्यसे दो चार गूढ़ बातें पूछीं । उनके यथासाध्य उत्तर पाने पर स्वामीजीने उसके कानमें महाबीज मन्त्र तीन बार उच्चारण किया और शिष्यसे तीनबार उच्चारण करवाया । अनन्तर साधनाके विषयमें कुछ उपदेश प्रदान करके निश्चल होकर अनिमेष नयनसे शिष्यके नयनोंकी ओर कुछ देर तक देखते रहे । अब शिष्यका मन स्तब्ध और एकाग्र होने पर वह एक अनिर्वचनीय भावसे निश्चल

पड़ गई।

होकर बैठा रहा। कितनी देर तक इस अवस्थामें रहा, इसका उसे कुछ ध्यान ही नहीं रहा। अनन्तर स्वामीजी बोले—"गुरुदक्षिणा लाओ"। शिष्यने कहा "क्या लाऊं"। यह सुनकर स्वामीजीने आज्ञा दी, "भण्डारसे कुछ फल ले आओ"। शिष्य भागते हुए भण्डारको गया और दस बारह लीचियें ले आया। स्वामीजीके करकमलोंमें पहुंचतेही स्वामीजी एक एक करके सब खा गये और बोले—"अच्छा तेरी गुरुदक्षिणा होगई"। जिस समय पूजागृहमें स्वामीजीसे शिष्य दीक्षित हो रहा था, तब मठका और एक ब्रह्मचारी दीक्षित होनेके लिये कृतसंकल्प होकर द्वारके बाहर खड़ा था। स्वामी शुद्धानन्दजीने उस समय तक ब्रह्मचारी अवस्थामें मठ पर रहने पर भी तान्त्रिकी दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। आज शिष्यको इस प्रकारसे दीक्षित होते देखकर बड़े उत्साहसे दीक्षा ग्रहण करना निश्चय किया और पूजाघरसे दीक्षित होकर शिष्यके निकलते ही वहां स्वामीजीके पास जा पहुंचे और अपना अभिप्राय प्रकाश किया। स्वामीजी भी शुद्धानन्दजीके विशेष आग्रहसे इसमें सम्मत हुए और पुनः पूजा करनेको आसन ग्रहण किया।

अनन्तर शुद्धानन्दजीको दीक्षा देनेके कुछ देर पीछे स्वामीजी महाराज घरसे बाहर निकल आये। भोजन पाकर लेटकर विश्राम करने लगे। शिष्यने भी शुद्धानन्द-जीके साथ स्वामीजीके पात्रावशेषको बड़े प्रेमसे ग्रहण किया और उनके पाँयते बैठ धीरे २ उनकी चरणसेवा करने लगा। कुछ देर विश्राम करनेपर स्वामीजी ऊपरकी बैठकमें जाकर बैठे। शिष्यने भी उस समय एक सुअव-सर पाकर उनसे प्रश्न किया—"महाराज, पाप और पुण्यका भाव कहांसे उत्पन्न हुआ?"

स्वामीजी। बहुत्वके भावसे यह सब आपहुंचा है। मनुष्य एकत्वकी ओर जितना बढ़ता जाता है उतनाही वह "हमतुमका" भाव कम होता जाता है जिसमेंसे कि सारा धर्म्माधर्म द्वन्द्वभाव उत्पन्न हुआ है। हमसे यह पृथक् है ऐसा भाव मनमें उत्पन्न होनेसे ही अन्यान्य द्वन्द्व भावोंका विकाश होता है। किन्तु सम्पूर्ण एकत्वअनुभव होने पर मनुष्यका शोक या मोह नहीं रहता—"तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः"। सब प्रकारकी दुर्बलताको ही पाप कहते हैं (Weakness is sin)। इससे हिंसा तथा द्वेष प्रभृतिका प्रकाश होता है। इस लिये

दुर्बलताका दूसरा नाम पाप है। हृदयमें आत्मा सर्वदा चमक रही है। परन्तु उधरको कोई ध्यान नहीं देते हैं। केवल इस जड़ शरीर, हड्डी व मांसके एक अद्भुत पिंजरे पर ही ध्यान रखकर "मैं, मैं" करते हैं। यही सब प्रकारकी दुर्बलताका मूल है। इस अभ्याससे ही जगत् में व्यवहारिक भाव निकले हैं। परन्तु परमार्थ भाव इस द्वन्द्वभावके परे वर्त्तमान है।

शिष्य। तो क्या इस सब व्यवहारिक सत्तामें कुछ सत्य नहीं है?

स्वामीजी। जब तक "मैं शरीर हूं" यह ज्ञान है, तब तक ये सत्य हैं। किन्तु जब "मैं आत्मा हूं" यह अनुभव होता है, तब यह सब व्यावहारिक सत्ता मिथ्या प्रतीत होती है। लोग जिसे पाप कहते हैं वह दुर्बलताका फल है। इस शरीरको "मैं" जानना—यह अहंभाव—दुर्बलताका रूपान्तर है। जब "मैं आत्मा हूं" इसी भाव पर मन स्थिर होगा तब तुम पाप व पुण्य, धर्म व अधर्म के पार पहुंचोगे। श्रीठाकुरजी कहा करते थे "मैं" के नाशमें ही दुःखका अन्त है।

शिष्य। यह "अहं" तो मरने पर भी नहीं मरता

इसको मारना बड़ा कठिन है।

स्वामीजी । हां। एक प्रकारसे यह कठिन भी है, परन्तु दूसरी रीतिसे बड़ा सुकर भी है। "मैं" यह पदार्थ कहां है क्या मुझे समझा सकता है? जो स्वयं है ही नहीं उसका मरना और जीना क्या ? अहंरूप जो एक मिथ्या भाव है इसीमें मनुष्य मोहित (hypnotised) है; बस। इस पिशाचसे मुक्ति प्राप्त होने पर यह स्वप्न दूर होता है और देख पड़ता है कि एक आत्मा आब्रह्म-स्तम्बतक सबमें विराजित हैं। इसीको जानना होगा, प्रत्यक्ष करना पड़ेगा। जो भी साधन भजन हैं वे सब इस आवरणको दूर करनेके निमित्त हैं। इसके हटनेसे ही विदित होगा कि चित् सूर्य अपनी प्रभासे स्वयं चमक रहा है। क्योंकि आत्मा ही एक मात्र स्वयंज्योति–स्वसंवेद्य है। जो वस्तु स्वसंवेद्य है वह दूसरे की सहायतासे क्या जानी जा सकती है? इसी कारण श्रुति कहती है, "विज्ञातारमरे केन विजानीयात्"। तू जो कुछ जानता है, वह मनकी ही सहायता से। किन्तु मन तो जड़ वस्तु है, उसके पीछे शुद्ध आत्मा रहनेके कारण मनका कार्य होता है। इसी कारणसे मनके द्वारा उस

आत्माको कैसे जानोगे ? इससे तो यह जान पड़ता है कि मन वा बुद्धि कोई भी शुद्धात्माके पास नहीं पहुंच सकती है। ज्ञानकी पहुंच यहीं तक है। परन्तु आगे जब मन विकल्प या वृत्तिहीन होता है, तब ही मनका लोप होता है और तबही आत्मा प्रत्यक्ष होती है। इस अवस्थाका वर्णन भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्य ने "अपरोक्षानुभूति" कहकर किया है।

शिष्य। किन्तु महाशय, मनही तो "अहं" है। मनका यदि लोप हुआ तो "मैं" कहां रहा?

स्वामीजी। यह जो अवस्था है यथार्थमें वही "अहं"का स्वरूप है। उस समयका जो "अहं" रहेगा वह सर्वभूतस्थ, सर्वग, सर्वान्तरात्मा होता है। घटाकाश टूटकर महाआकाशका प्रकाश होता है—घट टूटने पर क्या उसके अन्दरके आकाशका विनाश होजाता है? ऐसेही यह छोटा "अहं" जिसे तू शरीरमें बन्द समझता था, फैलकर सर्वगत अहं या आत्मरूपसे प्रत्यक्ष होता है। अतएव मैं कहता हूं कि मन मरा या रहा इसमें यथार्थ अहं या आत्माका क्या? यह बात समयमें तुझको प्रत्यक्ष होगी "कालेनात्मनि विन्दति"। श्रवण और मनन

करते करते इस बातकी अनुभूति होगी और मनके पार पहुंचेगा। तब ऐसे प्रश्न करनेका अवसरभी न रहेगा।

शिष्य यह सुन स्थिर होकर बैठा रहा। स्वामीजीने धीरे २ धूम्रपान करते हुए फिर कहा,—इसी सहज विषयको समझानेके लिये कितने ही शास्त्र लिखे गये हैं; तिस पर भी लोग इसको नहीं समझ सकते हैं। आपातमधुर चांदीके चकते रुपये और स्त्रियों के क्षणभंगुर सौन्दर्यमें मोहित होकर इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको कैसे खो रहे हैं! महामायाका कैसा आश्चर्य-जनक प्रभाव है! माता महामाया रक्षा करो! माता महामाया रक्षा करो!

सप्तम वल्ली ।

स्थान—कलकत्ता ।

वर्ष—१८९७ (मार्च व अप्रेल) ।

विषय—स्त्रीशिक्षा सम्बन्धमें स्वामीजीका मत—महाकाली-पाठशाला का परिदर्शन व प्रशंसा—और देशकी स्त्रियोंके प्रति भारत रमणियोंका विशेषत्व—स्त्री और पुरुष सबको एकसी शिक्षा देना कर्त्तव्य—सामाजिक किसी नियमको भी बलसे तोड़ना उचित नहीं - शिक्षाके प्रभावसे लोग खोटे नियमोंको स्वयं छोड़ देंगे ।

स्वामीजी अमेरिकासे लौट कर कुछ दिनसे कलकत्तेमें बलराम वसुजीके बागबाज़ारस्थ उद्यान वाटिका में ही ठहरे हैं । कभी कभी परिचित व्यक्तियोंसे मिलने को उनके स्थान पर भी जाते हैं । आज प्रातःकाल शिष्यने स्वामीजीके पास आकर उनको अपने यथा-रीति बाहर जानेके लिये तैयार पाया । स्वामीजीने शिष्यसे कहा, " मेरे साथ चल " । यह कहते कहते स्वामीजी सीढ़ियोंसे नीचे उतरने लगे; शिष्यभी पीछे पीछे चला । स्वामीजी शिष्यके साथ एक भाड़ेकी गाड़ी

में सवार हुये, गाड़ी दक्षिण ओर चली।

शिष्य। महाशय, कहांको चल रहे हैं?

स्वामीजी। चलो, अभी मालूम होजायेगा।

कहांको जारहे हैं इस विषयमें स्वामीजीने शिष्यसे कुछ भी नहीं कहा। गाड़ीके बिडनस्ट्रीटमें पहुंचने पर कथाप्रसंगमें कहने लगे तुम्हारे देशमें स्त्रियोंके पठन-पाठनके लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं दीख पड़ता। तुम स्वयं पठनपाठन करके योग्य बन रहे हो किन्तु जो तुम्हारे सुखदुःखकी भागी हैं—सब समयमें प्राण देकर सेवा करती हैं—उनकी शिक्षाके लिये, उनके उत्थानके लिये तुमने क्या किया है?

शिष्य। क्यों महाराज, आजकल तो स्त्रियोंके लिये कितनीही पाठशालायें व उच्चविद्यालय बनगयेहैं कितनी ही स्त्रियां एम्. ए., बी. ए. परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होगई हैं।

स्वामीजी। यह तो विलायती ढंग पर हो रहा है तुम्हारे धर्मशास्त्र व देशकी परिपाटीके अनुसार क्या कहीं भी कोई पाठशाला बालकोंकी बनी है; स्त्रियोंकी तो दूर जाने दो। इस देशके पुरुषोंमें भी शिक्षाका विस्तार अधिक नहीं है, इसी कारण गवर्नमेंटके Statistics

(सङ्ख्यासूचक विवरण) में जब पाया जाता है कि भारत वर्षमें प्रति शत केवल दस बारह मात्र लोग ही शिक्षित हैं, तो अनुमान होता है कि स्त्रियोंमें प्रति शत एकभी शिक्षिता न होगी। यदि ऐसा न होता तो देशकी ऐसी दुर्दशा क्यों होती ? शिक्षा विस्तार तथा ज्ञानका उन्मेष हुए बिना देशकी उन्नती कैसे होगी ? तुममेंसे जो शिक्षित हैं और जिन पर देशकी भविष्यत् आशा निर्भर है उनमें भी इस विषयकी कोई चेष्टा या उद्यम नहीं पाया जाता। किन्तु स्मरण रहे कि सर्वसाधारण में और स्त्रियोंमें शिक्षाका विस्तार न होनेसे उन्नतिका कोई उपाय नहीं है। इस कारण कुछ ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बनानेकी मेरी परम इच्छा है। ब्रह्मचारी, लोग समयपर संन्यास लेकर देश देशमें गाँव गाँवमें जायेंगे और जनसाधारणमें शिक्षाका विस्तार करनेका प्रबन्ध करेंगे और ब्रह्मचारिणियें स्त्रियोंमें विद्याका प्रचार करेंगी। परन्तु यह सब काम अपने देशके ढंग पर होना चाहिये। पुरुषोंके लिये जैसा शिक्षाकेन्द्र बनाना होगा वैसाही स्त्रियोंके निमित्त भी करना होगा। शिक्षिता और सच्चरित्रा ब्रह्मचारिणियें इस केन्द्रमें

कुमारियोंको शिक्षा दिया करेंगी। पुराण, इतिहास, गृह-कार्य, शिल्प, गृहस्थियोंके सब नियम इत्यादि वर्त्तमान विज्ञानकी सहायतासे आदर्श चरित्र गठन करनेकी उपयुक्त नीतियोंकी शिक्षा देनी होगी। कुमारियोंको धर्म-परायण व नीतिपरायण बनाना पड़ेगा। जिससे वह भविष्यमें अच्छी गृहिणी हो वही करना होगा। इन कन्याओंसे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह इन विषयोंमें और भी उन्नति कर सकेगी। जिनकी माता शिक्षिता व नीति-परायणा हैं उनके ही घरमें बड़े लोग जन्म लेते हैं। वर्त्तमान समयमें तो स्त्रियोंको काम करनेका यन्त्र बना रक्खा है। राम! राम!! तुम्हारी शिक्षाका क्या यही फल हुआ? स्त्रियोंको वर्त्तमान दशासे प्रथम उत्थान करना होगा। सर्वसाधारणको जगाना होगा; तब ही तो भारतका कल्याण होगा।

अब गाड़ीको कौर्नवालीस स्ट्रीटके ब्राह्मसमाज मन्दिर-से आगेको बढ़ते देखकर स्वामीजीने गाड़ीवालेसे कहा, "चोरबाग़ानके रास्तेको ले चलो"। गाड़ी जब उस रास्तेको मुड़ी तब स्वामीजीने शिष्यसे कहा "कि महाकाली पाठशालाकी स्थापनकर्त्री तपस्विनी माताजीने

पाठशाला दर्शनके लिये निमन्त्रण किया है।" इस पाठ-शालाकी स्थिति उस समय चोरबागानमें राजेन्द्रनाथ मल्लिकजीके मकानके पूर्व दिशामें एक भाड़ेके मकानमें थी। गाड़ी ठहरने पर दोचार भद्रपुरुषोंने स्वामीजीको प्रणाम किया और स्वामीजीको कोठेपर लिवा लेगये। तपस्विनी माताने भी खड़े होकर स्वामीजीका सत्कार किया। थोड़ी देर पीछे ही तपस्विनी माता स्वामीजीको पाठशालाकी एक श्रेणीमें ले गईं। कुमारियोंने खड़े होकर स्वामीजीकी अभ्यर्थना की और माताजीके आदेशसे शिवजीके ध्यानकी स्वरसे आवृत्ति करनी आरम्भकी। फिर किस प्रणालीसे पाठशालामें पूजनकी शिक्षादी जाती है वह भी माताजीके आदेशसे कुमारियां दिखलाने लगीं स्वामीजी भी उत्फुल्ल नयनसे यह सब देखके एक दूसरी श्रेणीकी छात्रियोंको देखनेको गये। वृद्धा माताजीने अपनेको स्वामीजीके साथ कुल श्रेणियोंमें घूमकर दिखाने के लिये असमर्थ जान दो तीन पाठशालाके शिक्षकोंको बुलाकर स्वामीजीको सब श्रेणियोंको अच्छे प्रकार से दिखलानेके लिये कहा। अनन्तर सब श्रेणियोंको देख कर स्वामीजी पुनः माताजीके पास लौट आये और

उन्होंने एक छात्रीको बुलाकर रघुवंशके तृतीय अध्याय के प्रथम श्लोककी व्याख्या करनेको कहा । कुमारीने उसकी व्याख्या संस्कृतमें ही करके स्वामीजीको सुनाई । स्वामीजीने सुनकर सन्तोष प्रकाश किया और स्त्रीशिक्षा प्रचार करनेमें इतना अध्यवसाय व यत्नका इतना साफल्य देखकर माताजीकी बहुत प्रशंसा करने लगे । इस पर माताजीने विनयसे कहा, " मैं छात्रियोंकी सेवा देवी भगवती समझकर कर रही हूं । विद्यालय स्थापन करके यश लाभ करनेका कोई विचार नहीं है ।"

विद्यालय सम्बन्धमें वार्त्तालाप करके स्वामीजीने जब विदाका उद्योग किया तब माताजीने स्वामीजीको Visitor's Book (स्कूल विषयमें अपना मत प्रकाश कर लिखनेके लिये निर्दिष्ट पुस्तक) में अपना मत प्रकाश करनेको कहा । स्वामीजीने प्रदर्शक पुस्तकमें अपना मत विशद्‌रूपसे लिख दिया । लिखित विषयकी अन्तिमपंक्ति शिष्यको अभीतक स्मरण है । वह यह थी—" The movement is in the right direction " अर्थात् कार्य उचित मार्गपर होरहा है ।

अनन्तर माताजीको वन्दना करके स्वामीजी फिर

गाड़ीपर सवार हुए और शिष्यसे स्त्रीशिक्षा विषय पर नाना वार्त्तालाप करते हुए बागबाज़ारकी ओर चलने लगे। उसका कुछ विवरण निम्नलिखित है—

स्वामीजी। देखो, कहां इनकी जन्मभूमि! कैसी त्यागिनी हैं, तथापि लोगोंके मंगलके लिये कैसा यत्न कर रही हैं! स्त्रीके अतिरिक्त और कौन छात्रियोंको ऐसी निपुण कर सका है? सब ही प्रबन्ध अच्छा पाया परन्तु पुरुषशिक्षकोंका वहां होना मेरी बुद्धिमें अच्छा नहीं मालूम होता। शिक्षिता विधवा या ब्रह्मचारिणियों-कोही पाठशालाका कुल भार देना चाहिये। इस देशकी स्त्रीपाठशालामें पुरुषोंका संसर्ग किंचिन्मात्रभी अच्छा नहीं

शिष्य। किन्तु महाशय, इस देशमें गार्गी, खना, लीलावतीके समान गुणवती शिक्षिता स्त्री अब कहां पाई जाती हैं?

स्वामीजी। क्या ऐसी स्त्री इस देशमें नहीं हैं? अरे, यह देश वही है जहां सीता व सावित्रीका जन्म हुआ है। पुण्यक्षेत्र भारतमें अभी तक स्त्रियोंमें जैसा चरित्र, सेवाभाव, स्नेह, दया, तुष्टि और भक्ति पाई

जाती है, पृथिवीपर और कहीं ऐसी नहीं पायी जाती। पाश्चात्य देशमें स्त्रियोंको देखनेपर यह बहुत समय तक प्रतीत नहीं होता था कि वे स्त्रियां हैं। ठीक पुरुषोंके समान प्रतीत होती थीं। ट्रामगाड़ी चलाती हैं, दफ्तर जाती हैं, स्कूल जाती हैं, प्रोफ़ेसरी करती हैं! एक मात्र भारतवर्षहीमें स्त्रियोंमें लज्जा, विनय इत्यादि देख कर नयनकी शान्ति होती है। ऐसे सुआधार होनेपर भी तुम उनकी उन्नति न करसके; इनको ज्ञानकी ज्योति दिखानेका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया; उचित रीतिसे शिक्षा पाने पर वे आदर्श स्त्री बन सकती हैं।

शिष्य। महाशय, माताजी जिस प्रकार कुमारियोंको शिक्षा देरही हैं, क्या इससे ऐसा फल मिलेगा? वे कुमारियां बड़ी होने पर विवाह करेंगी और थोड़ेही दिनमें अन्यान्य स्त्रियोंके समान हो जायेंगी। परन्तु मेरा विचार है कि यदि ब्रह्मचर्य्य दिलवाया जावे तो वे समाज और देशकी उन्नतिके लिये जीवन उत्सर्ग करने और शास्त्रोक्त उच्च आदर्श लाभ करनेमें समर्थ होंगी।

स्वामीजी। धीरे धीरे सब हो जायेगा। यहां अभी तक ऐसे शिक्षित पुरुषोंने जन्म नहीं लिया है जो

समाज शासनके भयसे भीत न होकर अपनी कन्याओं को अविवाहित रख सकें । देखो अभी कन्याओंकी अवस्था १२।१३ वर्ष न होने पर भी समाजके भयसे विवाह कर देते हैं ।

शिष्य । परन्तु महाशय, क्या यह सब संहिताकार लोग विना कुछ विचार किये ही बाल्यविवाहका अनुमोदन करते थे ? निश्चय इसमें कुछ गूढ़ रहस्य है ।

स्वामीजी । क्या रहस्य मालूम पड़ता है ?

शिष्य । विचारिये कि छोटी अवस्थामें कन्याओंको विवाह देनेसे वे श्वशुरालयमें जाकर लड़कपनसे ही कुल-धर्मको सीख जायेंगी और गृहकार्य्यमें निपुण बनेंगी । इसके अतिरिक्त पिताके गृहमें वयस्था कन्याके स्वेच्छाचारिणी होनेकी सम्भावना है; बाल्यकालमें विवाह होनेमें स्वतन्त्र होजानेका कोई भी भय नहीं रहता । और लज्जा, नम्रता, धीरज और श्रमशीलता प्रभृति रमणियोंके स्वाभाविक गुणोंका विकास होजाता है ।

स्वामीजी । दूसरे पक्षमें यह कहा जा सकता है कि बाल्यविवाह होनेसे बहुत स्त्रियां अकाल कालमें सन्तान प्रसव करके मर जाती हैं । उनकी सन्तान क्षीणजीवी

होकर देशमें भिक्षुकों की संख्याकी वृद्धि करती हैं। क्योंकि मातापिताका शरीर सम्पूर्ण रूपसे सबल न होनेसे सन्तान सबल और नीरोग कैसे उत्पन्न हो सकती है ? पठनपाठन कराके कुमारियोंका अधिक वयस् होनेपर विवाह करनेसे उनकी जो सन्तान होगी उसके द्वारा देशका कल्याण होगा। तुम्हारे घर घरमें इतनी विधवायें हैं इसका कारण ही बाल्यविवाह है। बाल्यविवाह कम होनेसे विधवासंख्या भी कम हो जायगी।

शिष्य। किन्तु महाशय, मेरा यह अनुमान है कि अधिक अवस्थामें विवाह होनेसे कुमारियां गृहकार्यमें उतना ध्यान नहीं देतीं। सुना है कि कलकत्तेके अनेक गृहोंमें सासु भोजन पकाती हैं और शिक्षित बहुयें शृंगार करके बैठी रहती हैं। हमारे पूर्ववंगमें ऐसा कभी नहीं होने पाता।

स्वामीजी। बुरा भला सबही देशोंमें है। मेरा मत यह है कि सब देशोंमें समाज अपने आप बनता है। इसी कारण बाल्यविवाह उठा देना या विधवाविवाह करना इत्यादि विषयमें सिर पटकना व्यर्थ है। हमारा यह

कर्त्तव्य है कि समाजके स्त्रीपुरुषोंको शिक्षा दें। इससे फल यह होगा कि वे स्वयं भले बुरेको समझेंगे और बुरेको आपही छोड़ देंगे। तब किसीको इन विषयों पर समाजको खण्डन व मण्डन करना न पड़ेगा।

शिष्य। आजकल स्त्रियोंको किस प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता है?

स्वामीजी। धर्म्म, शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य्य, रन्धन सीना, शरीरपालन, इन सब विषयोंका स्थूलमर्म्म सिखलाना उचित है। नाटक और उपन्यास उनके पासभी नहीं पहुंचने चाहिये। महाकाली पाठशाला अनेक विषय में ठीक ठीक पथपर चल रही है। किन्तु केवल पूजा-पद्धती सिखलानेमें ही काम न बनेगा। सब विषयोंमें उनकी आंखें खोल देना उचित है। छात्रियोंके सामने आदर्श नारीचरित्र सर्वदा रखकर त्यागरूप व्रतमें उनका अनुराग उत्पन्न कराना चाहिये। सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती, खना, मीराबाई इनके जीवन-चरित्रको कुमारियोंको समझाकर उनको अपने जीवनको इसी प्रकारसे गठित करनेका उपदेश करना होगा।

गाड़ी अब बागबाज़ारमें बलराम वसुजीके घरपर

पहुंची । स्वामीजी गाड़ीसे उतर कर ऊपर चले गये और दर्शनाभिलाषियोंसे जो वहां उपस्थित थे महाकाली पाठशालाका कुल वृत्तान्त कहने लगे ।

आगे, नूतनगठित "रामकृष्णमिशन" *के सभ्योंको क्या क्या कार्य्य कर्त्तव्य है, इन विषयोंकी आलोचना करनेके साथही साथ 'विद्यादान' व 'ज्ञानदान' का श्रेष्ठत्व अनेक प्रकारसे प्रतिपादन करने लगे । शिष्यको लक्ष्य करके बोले, 'Educate, Educate' (शिक्षा दो, शिक्षा दो) । "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" । शिक्षा-दानके विरोधी मतावलम्बियोंसे कटाक्ष करके बोले, 'सावधान, प्रह्लादके समान न बन जाना' । शिष्यके इसका अर्थ पूछने पर स्वामीजीने कहा, "क्या तूने सुना नहीं कि 'क' अक्षरको देखते ही प्रह्लादके आंखमें आंसू भर आयेथे, फिर उनसे पठनपाठन क्या हो सकता था ? यह निश्चित है कि प्रेमसे प्रह्लादके आंखमें आंसू भर आये थे और मूर्खकी आंखमें आंसू डरके मारे आते हैं । भक्तोंमें भी इस प्रकारके अनेक हैं ।" इस

* इस मिशनके उद्देश्य व कार्यप्रणाली नवम वल्ली में है ।

बातको सुनकर सब लोग हसने लगे । स्वामी योगानन्द यह सुनकर बोले " तुम्हारे मनमें जब कोई बात उत्पन्न होती है, उसकी जबतक पूर्ति नहीं होगी तब तक तुमको शान्ति कहां ? अब जो इच्छा हं वही होकर रहेगी ।

अष्टम वल्ली।

स्थान—कलकत्ता।

वर्ष—१८९७ खृष्टाब्द।

विषय—शिष्यका स्वयं भोजन पकाकर स्वामीजीको भोजन कराना—ध्यानके स्वरूप और अवलम्बन सम्बन्धी कथा—बाहरी अवलम्बनके आश्रयपर भी मनको एकाग्र करना सम्भव—एकाग्रता होने पर भी पूर्वसंस्कारसे साधकोंके मनमें वासनाओंका उदय होना—मनकी एकाग्रतासे साधकको अणिमादि भांति भांतिकी विभूतियां प्राप्त करनेका उपाय हो जाना—इस अवस्थामें किसी प्रकारकी वासनासे परिचालित होनेपर ब्रह्मज्ञानका लाभ न होना।

कुछ दिनोंसे स्वामीजी बागबाज़ारमें बलराम वसुजीके भवनमें ठहरे हैं। क्या प्रातः, क्या मध्यान्ह, क्या सायंकाल उनको विश्राम करनेको तनिक भी अवसर नहीं मिलता; क्योंकि स्वामीजी कहींभी क्यों न रहें, वहीं अनेक उत्साही युवक (कालिजके छात्र) उनके दर्शनोंको आते हैं। स्वामीजी सादरसे सबको धर्म्म या दर्शनके कठिन तत्त्वोंको सुगमतासे समझाते हैं। स्वामीजीकी प्रतिभासे मानो वे परास्त होकर निर्वाक्

हुये बैठे रहते हैं।

आज सूर्य्यग्रहण होगा। ग्रहण सर्वग्रासी है। ग्रहण देखनेके निमित्त ज्योतिषीगण नाना स्थानको गये हैं। धर्म्मपिपासु नरनारी दूर दूरसे गङ्गास्नान करनेको आये हैं और अतिउत्सुकतासे ग्रहण पड़नेके समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु स्वामीजीका ग्रहण सम्बन्धमें कोई विशेष उत्साह नहीं है। स्वामीजीका आदेश है कि शिष्य अपने हाथसे भोजन पकाकर स्वामीजीको भोजन करावे। शाक, तरकारी, और रसोई पकानेके सब उपयोगी पदार्थ इकट्ठा कर कोई ८ बजे दिन चढ़े शिष्य बलराम वसुके घरपर पहुंचा। उसको देखकर स्वामीजीने कहा; "तुम्हारे देशमें जिस प्रकार भोजन* पकाया जाता है

* बंगवासियोंका प्रधान आहार भात है परन्तु इसके साथ दाल, झोल (शोरवा), नाना स्वादविशिष्ट तरकारियां (यथा 'चचड़ी,' 'डनूला,' 'सुक्तुनी' 'घन्ट,' 'भाजा' व 'टक' प्रभृति) न पकनेसे उनकी भोजनपरिपाटी नहीं होती। वे दो चार तरह तरकारियांको एक साथ मिलाकर भिन्न २ मसाले व उपकरणके संयोजनसे कटु, तिक्त, अम्ल, मधुर प्रभृति रसकी तरकारी पकाने में बड़े निपुण हैं। पूर्वबंगवासियोंका एक विशेषत्व यह है कि वे तरकारियोंमें मसाला, विशेष करके लालमिरच बहुत डालते हैं।

उसी प्रकार बनाओ और ग्रहण पड़नेसे पूर्व ही भोजन होना चाहिये।"

बलराम बाबूके परिवारमेंसे कोई भी कलकत्तेमें नहीं था। इस कारण सारा गृह खाली था। शिष्यने भीतरके रसोईके भवनमें जाकर रसोई पकाना आरम्भ किया। श्रीरामकृष्णजीकी प्रेमी भक्तानी योगिनमाताने पासही उपस्थित रहकर रसोईके निमित्त सर्वद्रव्योंका आयोजन किया और कभी कभी पकानेका ढंग बतलाकर उसकी सहायता करने लगीं। स्वामीजी भी बीच बीच में वहां आकर रसोई देखकर शिष्यको उत्साहित करने लगे और कभी "तरकारीकी 'झोल' (शोरवा) तुम्हारे पूर्व्वबंगके ढंगका पके" कहकर हंसी करने लगे।

जब भात, मूंगकी दाल, झोल, खटाई, सुक्तुनी यह सब पदार्थ पकचुके थे तब स्वामीजी स्नान कर आ-पहुंचे और स्वयंही पत्तल बिछाकर बैठ गये। "अभी सब रसोई नहीं बनी है," कहने पर भी कुछ नहीं सुना, बड़े हट्टी बच्चेके समान बोले, "बड़ी भूख लगी है, अब ठहरा नहीं जाता, भूखके मारे आंतड़ी जल रही है"। लाचार होकर शिष्यने सुक्तुनी व भात

कहम गही।

परोस दिया। स्वामीजीने भी तुरन्त भोजन करना आरम्भ कर दिया। तत् पश्चात् शिष्यने कटोरीमें अन्यान्य शाकोंको परोसकर सामने रख दिया। फिर योगानन्द व प्रेमानन्दप्रमुख अन्य सब संन्यासियोंको अन्न व शाकादि परोसने लगे। शिष्यको रसोई पकानेमें पटुता नहीं थी किन्तु आज स्वामीजीने उसकी रसोईकी बहुत बहुत प्रशंसाकी। कलकत्तेवाले "पूर्वबंगकी सुक्तनी" के नामसेही बड़ी हंसी करते हैं किन्तु स्वामीजी यह भोजन कर बहुतही प्रसन्न हुये और बोले, "ऐसी अच्छी रसोई मैंने कभी नहीं पाई। यह 'झोल' जैसी चटपटी बनी है ऐसी और कोई तरकारी नहीं बनी।" खटाई चखकर बोले, "यह बिल्कुल वर्द्धमानवालोंके ढंगपर बनी है। अन्तमें सन्देश व दहीसे स्वामीजीने भोजन समाप्त किया और आचमन करके घरके भीतर खट्वा पर जा बैठे। शिष्य स्वामीजीके सामने वाले दालानमें प्रसाद पानेको बैठ गया। स्वामीजीने धूम्र पान करते करते उससे कहा, "जो अच्छी रसोई नहीं पका सकता वह साधुभी नहीं बन सकता। यदि मन शुद्ध न हो, तो किसीसे अच्छी स्वादिष्ट रसोई नहीं पकती।"

थोड़ी ही देर पीछे चारों ओर शङ्ख ध्वनि व घन्टा बजने लगा और स्त्री कन्ठोंकी "उलु" ध्वनि सुननेमें आई। स्वामीजी बोले, "अरे, ग्रहण पड़ने लगा, मैं सो जाऊं, तू चरणसेवा कर"। यह कहकर कुछ आलस्य व तन्द्राका अनुभव करने लगे। शिष्य भी उनकी पदसेवा करते २ विचार करने लगा, "ऐसे पुण्य समयमें गुरुपदोंकी सेवा करना ही मेरा जप, तपस्या व गंगास्नान है। ऐसा विचार कर शान्त मनसे स्वामीजीकी सेवा करने लगा। ग्रहणके समय सूर्यके छिप जानेसे चारों दिशामें सायंकालके समान तिमिर छा गया।

जब ग्रहणमुक्त होनेमें १५ । २० ही मिनट थे तब स्वामीजी सो कर उठे और मुंह हाथ धोकर धूम्रपान करते करते हंसकर शिष्यसे बोले, "लोग कहते हैं कि ग्रहणके समय यदि कुछ कियाजावे तो उससे क्रोड़गुणा अधिक फल प्राप्त होता है। इस लिये मैंने यह सोचा था कि महामायाने तो इस शरीरमें सुनिन्द्रा नहीं दी; यदि इस समय कुछ देर सो जाऊं तो आगे सुनिन्द्रा होगी परन्तु ऐसा नहीं हो सका। अधिकसे अधिक कोई १५ ही मिनट सोया हूंगा"।

अनन्तर स्वामीजीके पास सबके आ बैठने पर, स्वामीजीने शिष्यको उपनिषद् सम्बन्धमें कुछ कहनेको आदेश किया। इससे पहिले शिष्यने स्वामीजीके सामने कभी वक्तृता नहीं दी थी। उसका हृदय अब कांपने लगा परन्तु स्वामीजी छोड़नेवाले कब थे। लाचारीसे शिष्य खड़ा होकर "परांचि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः" मन्त्रपर व्याख्यान करने लगा। इसके आगे गुरुभक्ति और त्यागकी महिमा-वर्णन की और ब्रह्मज्ञान ही परमपुरुषार्थ है, यह सिद्धान्त करके बैठगया। स्वामीजीने शिष्यके उत्साह बढ़ानेके निमित्त पुनःपुनः करतल ध्वनि कर कहा, "बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!!"

तत्पश्चात् स्वामीजीने शुद्धानन्द, प्रकाशानन्द प्रभृति स्वामियोंको कुछ कहने को आदेश किया। स्वामी शुद्धानन्दने ओजस्विनी भाषामें ध्यानसम्बन्धी एक नातिदीर्घ वक्तृता दी। अनन्तर स्वामी प्रकाशानन्द प्रभृतिके कुछ वक्तृताके देने पर स्वामीजी वहांसे बाहर बैठकमें आये। तब सांझ होनेमें कोई घन्टा भर था। वहां सबके पहुंचने पर स्वामीजीने कहा, "जिसको जो कुछ पूछना है पूछो।"

शुद्धानन्द स्वामीने पूछा, "महाशय, ध्यानका स्वरूप क्या है ?"

स्वामीजी । किसी विषयपर मनको एकाग्र करनेका ही नाम ध्यान है । किसी एक विषयपर भी मनकी एकाग्रता होनेसे उसकी एकाग्रता जिसमें चाहो उसमें कर सकते हो ।

शिष्य । शास्त्रमें विषय और निर्विषयके भेदानुसार दो प्रकारके ध्यान पाये जाते हैं । इसका क्या अर्थ है और उनमेंसे कौन श्रेष्ठ है ?

स्वामीजी । प्रथम किसी एक विषयका आश्रय कर ध्यानका अभ्यास करना पड़ता है । किसी समयमें मैं एक छोटेसे काले विन्दु पर मनको संयम किया करता था । परन्तु कुछ दिनके अभ्यासके पीछे वह विन्दु मुझे दीखना बंद हो जाताथा । वह मेरे सामने है या नहीं, यह भी विचार नहीं कर सकता था । वायुहीन समुद्रकी नाईं मनका सम्पूर्ण निरोध हो जाताथा (अर्थात् वृत्तिरूपी कोई लहर नहीं रहती थी) । ऐसी अवस्थामें मुझको अतीन्द्रिय सत्यकी परछाई कुछ कुछ दिखाई देती थी । इसलिये मेरा विचार है कि किसी सामान्य बाहरी विषयका भी

आश्रयकर ध्यान करनेका अभ्यास करनेसे मनकी एकाग्रता होती है। तो जिसमें जिसका मन लगता है उसीका आश्रयकर ध्यानका अभ्यास करनेसे मन शीघ्र एकाग्र हो जाता है। इसी लिये हमारे देशमें इतने देवदेवी-मूर्त्तियों के पूजने की व्यवस्था है। और देवदेवीपूजासे ही कैसी शिल्पकी उन्नति हुई। परन्तु इस बातको अभी छोड़दो। अब बात यह है कि ध्यानका बाहरी अवलम्बन सबका एक नहीं हो सकता। जो जिस विषयकी आश्रयतासे ध्यानसिद्ध हो गया है, वह उसी अवलम्बन का ही वर्णन व प्रचार कर गया है। तत्पश्चात् क्रमशः वे मनको स्थिर करनेके लिये हैं इस बातको भूलने पर लोगोंने इस बाहरी अवलम्बनको ही श्रेष्ठ समझ लिया है। जो उपाय था उसको लेकर लोग मग्न हो रहे हैं और जो उद्देश्य था उसपर लक्ष्य कम होगया है। मनको वृत्ति-हीन करना ही उद्देश्य है; किन्तु किसी विषयपर तन्मय न होनेसे यह कभी नहीं हो सकता।

शिष्य। मनोवृत्ति विषयाकारा होनेसे उसमें फिर ब्रह्मकी धारणा कैसे हो सकती?

स्वामीजी। वृत्ति पहिले विषयाकारा होती है, यह

ठीक है। किन्तु तत्पश्चात् उस विषयका कोई ज्ञान नहीं रहता, तब शुद्ध 'अस्ति' मात्रका ही बोध रहता है।

शिष्य। महाशय, मनकी एकाग्रता होने परभी कामनायें व वासनायें क्यों उदय होती हैं?

स्वामीजी। वे सब पूर्व संस्कारसे होती हैं। बुद्धदेवजी महाराज जब समाधि अवस्थाको प्राप्त करनेको ही थे उस समयभी 'मार' का अभ्युदय हुआ था। 'मार' स्वयं कुछभी नहीं था वरन् मनके पूर्वसंस्कारका ही छायारूपसे प्रकाश हुआ था।

शिष्य। सिद्ध होनेके पहिले नाना विभीषिका देखने की बातें जो सुननेमें आती हैं; क्या वे सब मनकी ही कल्पनायें हैं?

स्वामीजी। और नहीं तो क्या? यह निश्चित है कि उस अवस्थामें साधक विचार नहीं कर सकता कि यह सब उसके मनकाही बाहिरी प्रकाश है। परन्तु वास्तव में बाहार कुछभी नहीं है। यह जगत् जो देखते हो यहभी नहीं है। सबही मनकी कल्पनायें हैं। मनके वृत्तिशून्य होनेपर उसमें ब्रह्माभास होता है जो संकल्प किया जाता है वही सिद्ध होता है। ऐसी सत्यसंकल्प अवस्था लाभ

करके भी जो समनस्क रह सकता है और किसी प्रकारकी वासनाओंका दास नहीं होता वही सिद्ध होता है। परन्तु जो ऐसी अवस्था लाभ करनेपर विचलित होता है वह नाना प्रकारकी सिद्धियां प्राप्त करके परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है।

इन बातोंको कहते कहते ही स्वामीजी पुनः पुनः 'शिव' 'शिव' नाम उच्चारण करने लगे। अन्तमें फिर बोले, "विना त्यागके इस गंभीर जीवन-समस्याका गूढ़ अर्थ निकालना और किसी प्रकारसे भी सम्भव नहीं है। 'त्याग' 'त्याग' 'त्याग' यही तुम्हारे जीवनका मूलमन्त्र होना चाहिये। "सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य-मेवाभयम्।"

नवम वल्ली।

स्थान—कलकत्ता।

वर्ष—१८९७ खृष्टाब्द।

विषय—श्रीरामकृष्णजीके भक्तोंको बुलाकर स्वामीजीका कलकत्तेमें रामकृष्णसमितिका गठन—श्रीरामकृष्णजीके उपदेशोंके प्रचारके विषयमें सबकी सम्मति पूछना—श्रीरामकृष्णजीको स्वामीजी किस भावसे देखते थे—श्रीरामकृष्णजी स्वामीजीको किस दृष्टिसे देखते थे. तत्सम्बन्धमें श्रीयोगानन्द स्वामीकी उक्ति—अपने ईश्वरावतारत्व विषयमें श्रीरामकृष्णजीकी उक्ति—अवतारत्वमें विश्वास करना बड़ा कठिन; देखनेपर भी नहीं होता. उसका होना उनकी दया पर ही निर्भर—कृपाका स्वरूप और कौन लोग इस कृपाको प्राप्त करते हैं—स्वामीजी और गिरीश बाबूका वार्त्तालाप।

स्वामीजीका अवस्थान कुछ दिनोंसे बागबाज़ारमें बलराम बसुजीके भवनमें है। स्वामीजीने परमहंसजीके सब गृहस्थी भक्तोंको यहां एकत्रित होनेके लिये समाचार भेजा था। इसीसे सायंकाल तीन बजे श्रीठाकुरजीके भक्तजन एकत्रित हुए हैं। स्वामी योगानन्द भी वहां उपस्थित हैं। स्वामीजीने एक समिति गठन करनेके

उद्देशसे सबका निमन्त्रण किया है। सब महानुभावोंके विराजनेपर स्वामीजीने कहा. "अनेक देश भ्रमण करने पर मैंने यह सिद्धान्त किया है कि विना संघके कोईभी बड़ा कार्य्य सिद्ध नहीं होता। परन्तु हमारे देशमें इसकी स्थिति यद्यपि प्रथमसे ही सर्वसाधारणके मतानुसार कीजावे तो वह अधिक कार्य करेगी, मुझे ऐसा अनुमान नहीं होता। पाश्चात्य देशके लिये यह नियम अच्छा है, क्योंकि वहांके सब नरनारी अधिक शिक्षित हैं और हमारे समान द्वेषपरायण नहीं हैं। वे गुणका सन्मान करना जानते हैं। मैं स्वयं एक तुच्छ मनुष्य हूं परन्तु मेराभी इन्होंने कितना सत्कार किया। इस देशमें शिक्षा-विस्तारके साथ जब साधारण लोग और भी सहृदय बनेंगे और अपने हृदयको छोटे २ मतोंकी संकीर्ण सीमासे हटाकर उदारतासे विचार करेंगे, तब साधारण लोगोंके मतानुसार काम चल सकता है। इन सब बातोंका विचार करके मैं देखता हूं कि हमारे इस संघके लिये एक प्रधान परिचालक होना आवश्यक है, और सब लोग उन्हींके आदेशको मानेंगे। कुछ समय पश्चात् सबके मतानुसारही कार्य्य करना पड़ेगा।

यह संघ उनके नाम पर स्थापित होगा जिसके नाम पर भरोसा कर हम संन्यासी हुये हैं और आप सब महानुभाव जिनको अपना जीवन-आदर्श मान संसार आश्रमरूप कार्यक्षेत्रमें विराजित हैं और जिनके देहावसान से २० ही वर्षमें प्राच्य व पाश्चात्य जगत्‌में उनके पवित्र नाम व अद्भुत जीवनीका प्रसार ऐसा आश्चर्यजनक हुआ है। हम सब प्रभुके सेवक हैं, आप लोग इस कार्यमें सहायता कीजिये।"

श्रीयुत गिरीशचन्द्र व अन्यान्य गृहस्थियोंके इस प्रस्तावपर सम्मत होनेपर रामकृष्णसंघकी भविष्यत् कार्यप्रणालीकी आलोचना होने लगी। संघका नाम रामकृष्णप्रचारक वा "रामकृष्ण मिशन" रक्खा गया। उसके उद्देश्यादि मुद्रित विज्ञापनोंसे उद्धृत किये जाते हैं।

उद्देश्यः—मनुष्योंके हितके निमित्त श्रीरामकृष्णजीने जिन तत्त्वोंका व्याख्यान किया है और उनके जीवनमें कार्यद्वारा जिनकी पूर्ति हुई है उन सबका प्रचार और मनुष्योंकी दैहिक, मानसिक और पारमार्थिक उन्नतिके निमित्त वे सब तत्त्व जिस प्रकारसे प्रयुक्त हो सकें उसमें सहायता करनाही इस संघ (मिशन) का उद्देश्य है।

व्रतः—जगत्‌के सब धर्म मतोंको एक अक्षय सनातन धर्मका

रूपान्तर मात्र जानकर, सब धर्मावलम्बियोंमें मित्रता स्थापनके लिये श्रीरामकृष्णजीने जिस कार्यकी अवतारणा की थी उसकी ही परिचालना करना इस संघका व्रत है।

कार्यप्रणाली:—मनुष्योंकी सांसारिक व आध्यात्मिक उन्नतिके लिये विद्यादान करनेके लिये उपयुक्त लोगोंको शिक्षित करना। शिल्प कार्य करके या परिश्रमसे जो अपनी जीविका करते हैं उनका उत्साह बढ़ाना और वेदान्त तथा अन्यान्य धर्मभावोंका जैसी कि उनकी रामकृष्णजीवनमें व्याख्या हुई थी, मनुष्य समाजमें प्रकाश करना।

भारतवर्षीयकार्य.—भारतवर्षके नगर नगरमें आचार्यव्रतग्रहण अभिलाषी गृहस्थ या संन्यासियोंकी शिक्षाके निमित्त आश्रम स्थापन करना और जिससे वे दूर दूर जाकर जन साधारणको शिक्षा दे सकें वैसे उपायका अवलम्बन करना।

विदेशीयकार्य विभाग:—भारतवर्षसे बाहर अन्यान्य विदेशोंमें व्रतधारियोंका भेजना और उन देशोंमें स्थापित सब आश्रमोंका भारतवर्षके आश्रमोंसे मित्रभाव व सहानुभूति बढ़ाना और नये नये आश्रमोंका संस्थापन करना।

स्वामीजी स्वयं ही उसी समितिके साधारण सभापति बने। स्वामी ब्रह्मानन्दजी कलकत्ता केन्द्रके सभापति और स्वामी योगानन्दजी सहकारी बने। एटर्नी बाबू

नरेन्द्रनाथ मित्रजी इसके सेक्रेटरी, डाक्टर शशिभूषण घोषजी और शरच्चन्द्र सरकारजी सहकारी सम्पादक और शिष्य शास्त्रपाठक निर्वाचित हुये । बलराम बसुजीके मकानपर प्रत्येक रविवारको चार बजेके उपरान्त समिति का अधिवेशन होगा यह नियम भी किया गया । इस सभाके पश्चात् तीन वर्ष तक "रामकृष्णमिशन" समिति का अधिवेशन प्रति रविवारको बलराम बसुजीके मकान पर हुआ । स्वामीजी जब तक फिर विलायतको नहीं गये, तब तक सुभीतानुसार समितिके अधिवेशनमें उप-स्थित होकर कभी उपदेश दान करके या कभी अपने किन्नर कन्ठसे गान सुनाकर सबको मोहित करते थे ।

सभाकी समाप्ति पर सभ्यलोगोंके चले जानेके पश्चात् योगानन्द स्वामीको लक्ष्य करके स्वामीजी कहने लगे, " इस प्रकारसे कार्य तो आरम्भ किया गया, अब देखना चाहिये कि गुरु महाराजजीकी इच्छासे कहांतक इसका निर्वाह होता है । "

स्वामी योगानन्द । तुम्हारा यह सब कार्य विदेशी ढंग पर हो रहा है । श्रीठाकुरजीका उपदेश क्या ऐसे ही था ?

स्वामीजी। तुमने कैसे जाना कि ये सब गुरुमहाराजके भावानुसार नहीं है ? तुम क्या अनन्त भावमय गुरु-महाराजको अपनी सीमामें आबद्ध करना चाहते हो ? मैं इस सीमाको तोड़कर उनके भाव जगत् भरमें फैला जाऊंगा। गुरुमहाराजजीने उनके पूजन पाठन करनेका उपदेश मुझे कभी नहीं दिया । वे साधन भजन, ध्यान-धारणा तथा और और ऊंचे धर्मभावोंके सम्बन्धमें जो सब उपदेश दे गये हैं, उनको पहिले अपनेमें अनुभव करके फिर सर्वसाधारणको उन्हें सिखलाना होगा । मत अनन्त हैं; पथभी अनन्त हैं। सम्प्रदायोंसे भरे हुये जगत्में और एक नवीन सम्प्रदायके गठन करनेके लिये मेरा जन्म नहीं हुआ है। प्रभुके चरणोंमें आश्रय पाकर हम कृतार्थ होगये हैं। त्रिजगत्के लोगोंको उनके सब भावोंको देनेके निमित्तही हमारा जन्म हुआ है।

इन बातोंका प्रतिवाद न करने पर स्वामी योगानन्द से स्वामीजी फिर कहने लगे, "प्रभुकी कृपाका परिचय इस जीवनमें बहुत पाया। वेही तो पीछे खड़े होकर इन सब कार्योंको करा रहे हैं । जब भूखसे कातर होकर वृक्षके नीचे पड़ा रहाथा, जब कोपीन बांधनेका वस्त्र तक नहीं

था, जब कौड़ीहीन होकर पृथ्वीभ्रमण करनेको कृत-संकल्प हुआथा, तबभी गुरुजीकी कृपासे सब विषयमें मैंने सहायता पाई। फिर जब इसी विवेकानन्दके दर्शन करनेके निमित्त चिकागोके रास्तोंमें लट चलेथे, जिस सन्मानके शतांशका एकांश भी प्राप्त करने पर साधारण मनुष्य उन्मत्त हो जाते हैं, गुरुजीकी कृपासे तब उस सन्मानकोभी सहजमें पचागया। प्रभुकी इच्छासे सर्वत्र विजय है। अब इस देशमें कुछ कार्य कर जाऊंगा। तुम सन्देह छोड़कर मेरे कार्यमें सहायता करो. देखोगे कि उनकी इच्छासे सब पूर्ण हो जायेगा।

स्वामी योगानन्द। तुम जैसा आदेश करोगे, हम वैसेही करेंगे। हम तो सदासे तुम्हारे आज्ञाकारी हैं। मैं तो कभी कभी स्पष्टही देखता हूं कि श्रीठाकुरजी स्वयं तुमसे यह सब कार्य करा रहे हैं। तथापि बीच बीचमें मनमें न जाने क्यों ऐसा सन्देह आजाता है। क्योंकि मैंने श्रीठाकुरजीकी कार्य करनेकी रीति औरही प्रकारकी देखीथी। इस लिये अनुमान होता है कि क्या हम उनकी शिक्षा छोड़कर दूसरे पथपर तो नहीं चलरहे हैं? इसी कारण तुमसे ऐसा कहता हूं और सावधान करदेता हूं।

-कदम नहीं।

स्वामीजी। इसके प्रति उत्तरमें कहता हूं कि साधा-रण भक्तोंने गुरुजीको जहां तक समझा है वास्तवमें हमारे प्रभु उतनेही नहीं हैं; वरन्, वे अनन्त भावमय हैं। यदि ब्रह्मज्ञानकी इयत्ता होभी किन्तु प्रभुके अगम्य भावा-की कुछ इयत्ता नहीं है। उनके कृपाकटाक्षसे, एक क्यों, लाखों विवेकानन्द अभी उत्पन्न हो सकते हैं। पर ऐसा न करके वे अपनीही इच्छासे मेरे द्वारा अर्थात् मुझे यन्त्रवत् बनाकर, यहां सबकार्य करा रहे हैं। इसमें मैं क्या करूं?

यह कहकर स्वामीजी अन्य कार्यके निमित्त कहीं चले गये। स्वामी योगानन्द शिष्यसे कहने लगे वाः! नरेन्द्रका कैसा विश्वास है! इस विषयपरभी क्या तूने ध्यान दिया? उन्होंने कहा कि गुरुजीके कृपाकटाक्षसे लाखों विवेकानन्द बन सकते हैं! धन्य है! धन्य उसकी गुरुभक्तिको! यदि ऐसी भक्तिके शतांशका एकांशभी हम प्राप्त करते तो कृतार्थ हो जाते।

शिष्य। महाशय, ठाकुरजी महाराज स्वामीजीके विषयमें क्या कहा करते थे?

योगानन्द। वे कहा करतेथे, "इस युगमें ऐसा आ-धार जगत्में और कभी नहीं आया। कभी कहतेथे "नरे-

न्द्र पुरुष और वे प्रकृति हैं, " नरेन्द्र उनके ससुराली हैं। कभी कहा करतेथे "अखन्डके घरके हैं, " कभी कहते थे "अखन्ड श्रेणीके जहां देव देवी सब अपना प्रकाश ब्रह्मसे स्वतन्त्र रखनेको समर्थ न होकर, उनमें लीन होगये हैं, जहां केवलमात्र जिन सात ऋषियोंको अपना प्रकाश स्वतन्त्र रखकर ध्यानमें निमग्न रहते देखा, नरेन्द्र उनमेंसे एकका अंशावतार हैं। " कभी कहा करतेथे "जगत्पालक नारायण, नर व नारायण नामसे जिन दो जनोंने ऋषि मूर्त्ति धारण करके जगत्के कल्याणके लिये तपस्या की थी, नरेन्द्र उसी नर ऋषिका अवतार हैं। " कभी कहतेथे " शुकदेवजीके समान इनको भी मायाने स्पर्श नहीं किया है।

शिष्य। क्या ये सब बात सत्य हैं? या ठाकुरजी भावावस्थामें समय समयमें एक एक प्रकारका उनको कहा करतेथे?

योगानन्द। उनकी सब बात सत्य हैं। उनके श्री-मुखसे भूलचूकसेभी मिथ्या बात नहीं निकली।

शिष्य। तब फिर क्यों कभी कभी ऐसे भिन्न प्रकारसे कहा करते थे?

योगानन्द। तेरी समझमें नहीं आया। नरेन्द्रको सबका समष्टिप्रकाश कहा करतेथे। क्या तुझे नहीं दीख-पड़ता कि नरेन्द्रमें ऋषिका वेदज्ञान शङ्करका त्याग, बुद्धजीका हृदय शुकदेवजीका मायारहित भाव और ब्रह्मज्ञानका पूर्ण विकाश एक साथ वर्त्तमान है? गुरु-महाराज इसीसे बीच बीचमें नरेन्द्रके विषयमें ऐसी नाना प्रकारकी बात कहा करतेथे। जो वे कहतेथे वह सब सत्यहै।

शिष्य सुनकर निर्वाक् होगया। इतनेमें स्वामीजी लौटे और शिष्यसे पूछा "क्या तेरे देशमें सब लोग गुरुजीके नामसे विशेषरूपसे परिचित हैं?"

शिष्य। मेरे देशसे तो केवल नागमहाशय ही श्रीठाकुरजीके पास आयेथे। उनसे समाचार पाने पर अनेक लोग गुरुजीके विषयमें जाननेको उत्सुक हुए हैं। परन्तु वहांके नागरिक गुरुमहाराजको ईश्वरका अवतार अभीतक नहीं जान सके, और कोई कोई यह बात सुनकर भी इस पर विश्वास नहीं रखते हैं।

स्वामीजी। इस बातपर विश्वास करना क्या तूने ऐसा सुगम समझा है? हमने उनको सब प्रकारसे जांचा, उनके मुंहसे यह बात बारम्बार सुनी, चौबीस

बन्दे उनके साथ रहे तिसपर भी बीच बीचमें हमको सन्देह होता है। तो फिर औरों को क्या कहें?

शिष्य। महाशय, गुरुजी पूर्णब्रह्म भगवान् थे, क्या यह बात उन्होंने कभी अपने मुंहसे कही थी?

स्वामीजी। कितनेही बार कहा था। हम लोगोंमें से सबसे कहा था। जब वे काशीपुरके बागमेंथे और शरीर पात होनेको हो रहा था तब मैंने उनकी शय्याके निकट बैठकर एक दिन मनमें सोचा कि यदि तुम अब कह सको "मैं भगवान् हूं" तब मेरा विश्वास होगा कि तुम सत्य ही भगवान् हो। तब चोलेके छुटनेके दोही दिन बाकी थे। उक्त बातको सोचतेही गुरुजीने एकाएक मेरी ओर देखकर कहा, "जो राम थे, जो कृष्ण थे, वेही अब इस शरीरमें रामकृष्ण हैं, परन्तु तेरे वेदान्तके मतसे नहीं।" मैं तो सुनकर भौचक्का होगया। प्रभुके मुंहसे बारम्बार सुनने पर भी हमें ही अभी तक पूर्ण विश्वास नहीं हुआ—सन्देह व निराशामें मन कभी कभी आन्दोलित होता है—तो फिर औरों की बात क्या? हमारेही समान देहधारी एक मनुष्यको ईश्वर कहकर निर्देश करना और उनपर विश्वास रखना बड़ा ही कठिन

है । सिद्धपुरुष या ब्रह्मज्ञ तक अनुमान करना सम्भव है । उनको चाहे जो कुछ कहो । चाहे कुछ समझो, महापुरुष मानो या ब्रह्मज्ञ, इसमें क्या धरा है । परन्तु गुरुजी जैसे पुरुषोत्तमने इससे पहिले जगत्‌में और कभी जन्म नहीं लिया । संसारके घोर अन्धकारमें अब यही महापुरुष ज्योतिःस्तम्भ स्वरूप हैं । इनके ही ज्योतिसे मनुष्य संसार समुद्रके पार चले जायेंगे ।

शिष्य । मैं अनुमान करता हूं कि जब तक कुछ देख सुन न ले तब तक यथार्थ विश्वास नहीं होता । सुना है कि मथुर बाबूने गुरुजीके विषयमें कितनी ही अद्भुत घटनायें प्रत्यक्ष की थीं और उन्हींसे उनका विश्वास गुरुजीपर जमा था ।

स्वामीजी । जिसे विश्वास नहीं है, उसे देखने पर भी कुछ नहीं होता । देखने पर सोचता है कि यह अपने ही मस्तिष्कका विकार या स्वप्नादि है । दुर्योधन ने भी विश्वरूप देखा था अर्जुनने भी विश्वरूप देखाथा । अर्जुनको विश्वास हुआ किन्तु दुर्योधन उसे जादू समझा । यदि वेही न समझावें तो और किसी प्रकारसे समझानेका उपाय नहीं है । किसी किसीको बिना कुछ

देखे सुनेही पूर्ण विश्वास होता है। और किसीको बारह वर्ष तक आमने सामने रहकर नाना प्रकार की विभूतियां देखकर भी सन्देहमें पड़ा रहना होता है। सारांश यह है कि उनकी कृपा चाहिये। परन्तु लगे रहनेसे ही उनकी कृपा होगी।

शिष्य। महाशय, कृपाका क्या कोई नियम है ?

स्वामीजी। है भी, नहीं भी।

शिष्य। यह कैसे ?

स्वामीजी। जो तनमनवचनसे सर्वदा पवित्र रहते हैं, जिनका अनुराग प्रबल है, जो सत् असत्के विचार करनेवाले हैं और ध्यान व धारणामें नियुक्त रहते हैं, उन पर ही भगवानकी कृपा होती है। परन्तु भगवान् प्रकृतिके सब नियमों (natural law) के पार हैं अर्थात् किसी नियमके वशमें नहीं हैं। गुरुमहाराजजी जैसा कहा करते थे " उनका स्वभाव बच्चों के समान है। " इस कारण यह देखनेमें आताहै कि किसी किसीने कोड़ों जन्मसे उन्हें पुकारा किन्तु उनसे कोई उत्तर नहीं पाया। फिर जिसको हम पापी तापी नास्तिक जानते हैं, उसमें एकाएक चैतन्यका प्रकाश हुआ। उसक

न मांगने पर भी भगवानने उस पर कृपा करदी। तुम यह कह सकते हो कि उसके पूर्व जन्मका संस्कार था, परन्तु इस रहस्यको समझना बड़ा कठिन है। गुरुमहाराजने कभी ऐसाभी कहा कि उन पर सम्पूर्ण सहारा रक्खो। जैसा झूंटा पत्तल तूफ़ानके सामने रहता है, उसी प्रकार तुमभी रहो। उन्होंने फिर भी कहा कि कृपारूपी हवा तो चलरही है, तुम अपनी पाल उठादो।

शिष्य। महाशय यह तो बड़ी कठिन बात है। कोई युक्तिही यहां नहीं ठहर सकती।

स्वामीजी। वाद विचारकी दौड़ तो मायासे अधिकृत इसी जगतमें है, देश-काल-निमित्तकी सीमाके अन्तर्गत है। परन्तु वे देश कालातीत हैं। उनके नियम (law) भी है, फिर वे नियम (law) के बाहर भी हैं। प्रकृतिके जो कुछ नियम है उन्हीं ने ही उनको किया वा वेही स्वयं बने और इन सबके पारभी वे रहें। जिन्होंने उनकी कृपाको प्राप्त किया वे उस मुहूर्त्तमें ही सब नियमोंके पार (beyond law) पहुंचते हैं। इसी लिये कृपाका कोई विशेष नियम (condition) नहीं है। कृपाको प्राप्त करना उसकी इच्छा परहै। यह कुल

जगत्सृजन ही उसकी एक मौज है । " लोकवत्तु लीला-कैवल्यं " । जो इस जगत्को अपनी इच्छानुसार तोड़ता और बनाता है, क्या वह अपनी कृपासे किसी महा-पापीको मुक्ति नहीं दे सकता । तब भी किसी किसीसे कुछ साधन भजन करा लेता है और किसीसे नहीं भी कराता । यह भी उसकी मौज है ।

शिष्य । महाशय, यह बात ठीक समझमें नहीं आई ।

स्वामीजी । और अधिक समझनेमें क्या फल पाओगे ? जहांतक सम्भव हो उनसेही मन लगा रक्खो इसीसेही इस जगत्की माया स्वयं छुटजायेगी । परन्तु लगा रहना पड़ेगा । कामिनी और कांचनसे मनको पृथक् रखना पड़ेगा । सर्वदा सत् और असत्का विचार करना होगा । मैं शरीर नहीं हूं ऐसे विदेह भावसेही अवस्थान करना पड़ेगा । मैं सर्वग आत्मा हूं इसीकी अनुभूति होनी चाहिये । इसी प्रकार लगे रहनेकाही नाम पुरुषकार है । इस पुरुषकारकी सहायतासे ही उन पर निर्भरता आती है जिसको पंचम पुरुषार्थ कहते हैं ।

स्वामीजी फिर कहनेलगे, " यदि तुम पर उनकी

कृपा नहीं होती तो क्यों तुम यहां आते ? गुरु महाराज कहा करते थे, 'जिन पर भगवानकी कृपा हुई है उनको यहां अवश्यही आना होगा। वह कहींभी क्यों न रहे, कुछ भी क्यों न करे यहांकी बातोंमें और यहांके भावोंसे अवश्य अभिभूत होना होगा।' तुम अपनेही सम्बन्धमें सोचकर देखो ना, जो नागमहाशय प्रभुकी कृपासे सिद्ध हुये थे और उनकी कृपाको ठीक ठीक समझते थे उनका सत्संग ही क्या बिना ईश्वरकी कृपासे कभी हो सकता है ? "अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिं।" जन्म जन्मान्तरके संस्कारसेही महापुरुषोंका दर्शन होता है। शास्त्रमें उत्तमा भक्तिके जो सब लक्षण दिये हैं, वे सबही नागमहाशयमें प्रगट हुये थे। "तृणादपिसुनीचेन" जो लोग कहते हैं वह एक मात्र नागमहाशयमें ही मैंने देखा है। तुम्हारा पूर्वबंगाल देश धन्य है क्योंकि नाग महाशयके चरण रेणुसे यह देश पवित्र होगया है।"

बात करते हुये स्वामीजी महाराज महाकवि श्रीयुत गिरीशचन्द्रघोषजीके भवनको भ्रमण करते हुए निकले। स्वामी योगानन्द और शिष्यभी साथ चले। गिरीश बाबूके भवनमें उपस्थित होकर स्वामीजीने उपवेशन

किया और कहा..." जी. सी.* आजकल मनमें केवल यही उदय हो रहा है कि यह करूं, वह करूं, उनके वचनोंको संसारमें फैला दूं इत्यादि। फिर यहभी शंका होती है कि इससे भारतमें एक नवीन सम्प्रदायका सृजन न होजावे। इस लिये बड़ी सावधानतासे चलना पड़ता है। कभी ऐसाभी विचार होता है कि यदि कोई सम्प्रदाय बनजाय तो बनने दो। फिर सोचता हूं कि नहीं, उन्होंने तो किसीके भावको नष्ट नहीं किया। सम-दर्शनकरना ही उनका भाव था। ऐसा विचार कर अपनी इच्छाको समय समय पर दबा देता हूं। इसपर तुम्हारा क्या विचार है ?

गिरीश बाबू। मेरा विचार और क्या हो सकता है ? तुमतो उनके हाथमें यन्त्र हो, जो करायेंगे वह तुमको अवश्य करना होगा। मैंतो देखता हूं कि प्रभुकी शक्ति तुमसे कार्य्य करा रही है। मुझको स्पष्ट हो यह प्रत्यक्ष हो रहा है।

स्वामीजी। और मैं देखता हूं कि हम अपनी

---

*स्वामीजी गिरीशचन्द्रको जी. सी. कहकर पुकारा करते थे।

इच्छानुसार कार्य्य कर रहे हैं । परन्तु अपने आपद व विपदमें अभाव व दारिद्र्यमें वह प्रत्यक्ष होकर ठीक मार्ग पर मुझे चलाते हैं यह मैंने भी देखा है। परन्तु प्रभुकी शक्तिकी इयत्ता कुछभी नहीं कर सका।

गिरीश बाबू। उन्होंने तुम्हारे विषयमें कहा था कि सब समझ जानेसे ही सब शून्य हो जायेगा। तो फिर कौन करेगा और किसे करायेगा।

ऐसे वार्त्तालापके पश्चात अमेरिकाका प्रसंग होने लगा। गिरीश बाबूने स्वामीजीका ध्यान अन्य प्रसंगमें ले जानेके लिये अपनी इच्छासेही इस प्रसंगका आरम्भ किया, यही मेरा अनुमान हुआ। ऐसा करनेका कारण पूछने पर गिरीश बाबूने अन्य समयमें मुझसे कहा था, "गुरुमहाराजके श्रीमुखसे सुना है कि इस प्रकारके विषयका वार्त्तालाप करते करते यदि स्वामीजीको संसार वैराग्य वा ईश्वरोद्दीपना होकर अपने स्वरूपका एकबार दर्शन हो जाय (अर्थात् अपने स्वरूपको पहिचान जावें) तो एक मुहूर्त्तभी उनका शरीर नहीं रहेगा।" इसी कारण मैंने देखा कि स्वामीजीके संन्यासी गुरुभाइयोंने जबजब उनको २४ घन्टो गुरुजीका प्रसंग करते हुये पाया तबतब

अन्यान्य प्रसंगमें उनका मन लगा दिया। अब अमेरीकाके प्रसंगमें स्वामीजी मत्त हो गये । वहाँकी समृद्धि तथा स्त्री पुरुष का गुणागुण और उनके भोग विलास इत्यादि की नाना कथाओंका वर्णन करने लगे।

दशम वल्ली ।

स्थान—कलकत्ता ।

वर्ष—१८९७ खृष्टाब्द ।

विषय—स्वामीजीका शिष्यको ऋग्वेद पढ़ाना—पंडित मोक्षमूलरके सम्बन्धमें स्वामीजीका अद्भुत विश्वास—ईश्वरने वेदमन्त्रका आश्रय लेकर सृष्टि रची है, इस मतका अर्थ—वेद शब्दात्मक—'शब्द' पदका प्राचीन अर्थ नादसे शब्दका और शब्दसे स्थूल जगत्का विकाश समाधि अवस्थामें प्रत्यक्ष होता—समाधि अवस्थामें अवतार पुरुषोंको यह विषय कैसा प्रतिभात होता—स्वामीजीकी सहृदयता—ज्ञान व प्रेम के अविच्छिन्न सम्बन्धके विषयमें गिरीश बाबूसे शिष्यका वार्तालाप—गिरीश बाबूके सिद्धान्त शास्त्रके विरोधी नहीं—गुरु भक्तिरूपी शक्तिसे गिरीश बाबूने सत्यसिद्धान्तोंको प्रत्यक्ष किया—बिना समझेही दूसरों को अनुकरण करने लगना दूषणीय है—भक्त व ज्ञानी भिन्न भिन्न स्थानोंसे निरीक्षण करके कहते हैं, इसीसे उनके कथनमें कुछ भिन्नताका अनुमान होना—सेवाश्रम स्थापन करनेके निमित्त स्वामीजीका विचार ।

आज दस दिनसे शिष्य स्वामीजीसे ऋग्वेदका सायनभाष्य पढ़ता है । स्वामीजी बागबाज़ारमें बलराम बसुजीके भवनमें ही ठहरे हुए हैं । किसी धनीके घरसे

(Maxmullar) मोक्षमूलर-मुद्रित बहुतसी संख्याओंसे पूर्ण एक ऋग्वेद ग्रन्थ लाया गया है । प्रथम तो ग्रन्थ नया था तिस पर वैदिक भाषा कठिन होनेके कारण अनेक स्थान पर शिष्य अटक अटक जाता था। यह देखकर स्वामीजी उसको स्नेहसे गंवार कहकर कभी कभी उसकी हंसी उड़ाते थे और उन स्थानोंका उच्चारण व पाठ बतलाते थे। वेदके अनादिभावको प्रमाण करनेके निमित्त सायनाचार्यने जो अद्भुत युक्ति कौशल प्रकट किया है उसकी व्याख्या करते समय स्वामीजीने भाष्यकारकी बहुत प्रशंसा की और कहीं कहीं प्रमाण देकर उन पदोंके गूढ़ार्थ विषयमें अपना भिन्नमत प्रकाशकर सायनकी ओर कटाक्ष भी किया।

इसी प्रकारसे कुछ देर तक पठन पाठन होने पर स्वामीजीने मोक्षमूलरके प्रसंगमें कहा, "मुझे कभी ऐसा भी अनुमान होता है कि स्वयं सायनाचार्यने अपने भाष्यका अपनेही आप उद्धार करनेके निमित्त मोक्षमूलरके रूपमें पुनः जन्म लिया है । ऐसा सिद्धान्त मेरा बहुत दिनोंसे ही था। पर मोक्षमूलरको देखकर मेरा सिद्धांत और भी दृढ़ हो गया है। ऐसा परिश्रमी और ऐसा वेद-

वेदान्तसिद्ध पंडित हमारे देशमें भी नहीं पाया जाता।
इनके अतिरिक्त ठाकुरजी महाराज (श्रीरामकृष्णदेवजी)
परभी उनकी कैसी गंभीर भक्ति पाई ! ठाकुरजीके अव-
तारत्व परभी विश्वास रखता है । मैं उसके ही भवनमें
अतिथि रहा था-कैसा यत्न व सत्कार किया । दोनों वृद्ध
पतिपत्नीको देखकर ऐसा अनुमान होता था कि मानो
श्रीवशिष्ठदेव और देवी अरुन्धती संसारमें वास कर
रहे हैं । मुझको विदा देते समय वृद्धकी आंखोंसे आंसू
टपकने लगे।

शिष्य । अच्छा महाशय, यदि सायन ही मोक्षमूलर
हुए हैं तो पवित्र भूमि भारतको छोड़कर उन्होंने म्लेच्छ
बन कर क्यों जन्म लिया ?

स्वामीजी । 'मैं आर्य हूं,' 'वे म्लेच्छ हैं' इत्यादि विचार
व विभाग अज्ञानतासे ही उत्पन्न होते हैं । परन्तु जो वेदके
भाष्यकार हैं जो ज्ञानकी अग्निरूपी मूर्त्ति हैं उनके लिये
वर्णाश्रम या जातिविभाग कैसा ? उनके सन्मुख यह सब
अर्थहीन है । जीवके उपकारार्थ जहां चाहे वहां जन्म ले
सकते हैं । विशेष करके जिस देशमें विद्या व धन दोनों
हैं वहां यदि जन्म न लेते तो ऐसा बड़ा ग्रन्थ छापनेका

व्यय कहां से आता ? क्या तुमने नहीं सुना कि ईस्ट-इन्डियाकम्पनीने इस ऋग्वेदके छपवानेके लिये नौलाख रुपये नगद दिये थे । परन्तु उससेभी पूरा नहीं पड़ा । यहांके (भारतके) सैंकड़ों वैदिक पंडितोंको मासिक वेतन देकर इस कार्यमें नियुक्त किया गया था । विद्या व ज्ञानके निमित्त इतना व्यय और ऐसी प्रबल ज्ञानकी तृष्णा वर्त्तमान समयमें क्या किसीने इस देशमें देखी है ? मोक्षमूलरने स्वयंही भूमिकामें लिखा है कि वह २५ वर्ष तक तो केवल इसके लिखनेमेंही रहे और छपवानेमेंभी और २० वर्ष लगे । ४५ वर्ष तक एकही पुस्तकसे लगे रहना क्या साधारण मनुष्यका कार्य है ? इसीसेही समझलो कि मैं क्यों उनको स्वयं सायन कहता हूं । "

मोक्षमूलरके विषयमें ऐसा वार्त्तालाप होनेके पश्चात् फिर ग्रन्थ पाठ होने लगा । वेदका आश्रय लेकरही सृष्टिका विकाश हुआ है, यह जो सायनका मत है, स्वामीजीने नाना प्रकारसे इसका समर्थन किया और कहा, "वेदका अर्थ अनादि सत्यका समूह है" । वेदज्ञ ऋषियोंने इन सत्योंको प्रत्यक्ष कियाथा । बिना अतीन्द्रिय दृष्टिके साधारण दृष्टिसे ये सत्य प्रत्यक्ष नहीं होते । इसीसे वेदमें ऋषिका

अर्थ मन्त्रार्थदर्शी है, यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मणादि जाति विभाग वेदके पीछे हुआ था। शब्दात्मक अर्थात् भावात्मक वा अनन्तभावराशिकी समष्टिको ही वेद कहते हैं। "शब्द" इस पदका वैदिक प्राचीन अर्थ सूक्ष्मभाव है, जो फिर आगे स्थूलरूपसे अपनेको प्रकाश करता है। इसलिये प्रलयकालमें भविष्यत् सृष्टिका सूक्ष्म बीजसमूह वेदमें ही सम्पुटित रहता है। इसीसे पुराणमें पहिले पहिल मीनावतारसे वेदका उद्धार दिखाई देता है। प्रथम अवतारसे ही वेदका उद्धार हुआ। फिर उसी वेदसे क्रमशः सृष्टिका विकाश होने लगा। अर्थात् वेद निहित शब्दोंका आश्रय लेकर विश्वके सब स्थूल पदार्थ एक एक करके बनने लगे, क्योंकि सब स्थूल पदार्थोंके सूक्ष्मरूप शब्द अर्थात् भाव हैं। पूर्व पूर्व कल्पोंमें भी ऐसेही सृष्टि हुई थी, यह बात वैदिक सन्ध्याके मंत्रमेंही है " सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत् पृथिवीं दिवञ्चान्तरीक्षमथो स्वः। समझे?"

शिष्य। परन्तु, महाशय, यदि कोई वस्तुही न हो तो शब्द किसके लिये प्रयोग होगा? और पदार्थोंके नामभी कैसे बनेंगे?

स्वामीजी । वर्त्तमान अवस्थामें ऐसाही अनुमान होता है । परन्तु देखो यह जो घट है उसके टूट जाने पर क्या घटत्वभी नाश होगा ? नहीं । क्योंकि यह घट स्थूल है और घटत्व घटकी सूक्ष्म वा शब्दावस्था है । इसी प्रकारसे सब पदार्थोंकी शब्दावस्था ही उनकी सूक्ष्मावस्था है । और जिन वस्तुओंको हम देखते हैं, सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, वे ऐसी शब्दावस्थामें अवस्थित पदार्थोंके स्थूल विकाश मात्र हैं । जैसे कार्य और उसका कारण । जगत्के नाश होने परभी जगत्बोधात्मक शब्द अर्थात् सब स्थूल पदार्थोंके सूक्ष्मस्वरूप ब्रह्ममें कारण रूपसे वर्त्तमान रहते हैं । जगद्विकाश होनेसे पूर्व ही प्रथम इन पदार्थोंकी सूक्ष्म स्वरूपसमष्टि लहराने लगती है और उसीका प्रकृतिस्वरूप शब्दगर्भात्मक अनादिनाद ओंकार अपने आपहीं उठता है । अनन्तर उसी समष्टिसे विशेष विशेष पदार्थोंका प्रथम सूक्ष्म प्रतिकृति अर्थात् शाब्दिक-रूप और तत्पश्चात् उनका स्थूलरूप प्रकट होता है । यह शब्द ही ब्रह्म है, शब्द ही वेद है । यह ही सायनका अभिप्राय है, समझे ?

शिष्य । महाशय, ठीक समझमें नहीं आया ।

स्वामीजी । यहां तक तो समझ गये कि जगत्में जितने घट हैं उन सबके नष्ट होने परभी 'घट' शब्द रह सकता है । फिर जगत् नाश हो जाने पर अर्थात् जिन वस्तुओंकी समष्टिको जगत् कहते हैं, उनके नाश होने परभी उन पदार्थोंके बोध कराने वाले शब्द क्यों नहीं रह सकते हैं ? और उनसे सृष्टि फिर क्यों नहीं प्रकट हो सकती ?

शिष्य । परन्तु, महाशय, 'घट' 'घट' चिल्लानेसे तो घट नहीं बनता है ।

स्वामीजी । तेरे या मेरे इस प्रकार चिल्लानेसे नहीं बनता । किन्तु सिद्धसंकल्प ब्रह्ममें घटकी स्मृति होतेही घटका प्रकाश हो जाता है । जब साधारण साधकोंकी इच्छासे अघटन घटन हो जाता है तब सिद्धसंकल्प ब्रह्मका कहना ही क्या है । सृष्टिसे पूर्व ब्रह्म प्रथम शब्दात्मक बनते हैं । फिर ओंकारात्मक या नादात्मक होते हैं । तत्पश्चात् पहिले कल्पोंके भांति भांति शब्द यथा भूः, भुवः, स्वः, वा गो, मानव घटपट इत्यादिका प्रकाश उसी ओंकारसे होता है । सिद्धसंकल्प ब्रह्ममें क्रमशः एक एक शब्दके होतेही पदार्थोंकाभी प्रकाश हो जाता है और यह

विचित्र जगत्का विकाश ही उठता है। अब समझे न कि शब्द ही कैसे सृष्टिका मूल है?

शिष्य। हां महाराज; समझमें तो आया किन्तु ठीक धारणा नहीं होती।

स्वामीजी। अरे बच्चा! प्रत्यक्षरूपसे अनुभूति होना क्या ऐसा सुगम समझा है? जब मन ब्रह्मावगाही होता है तबही वह एक एक करके ऐसी अवस्थाओंमें होकर निर्विकल्प अवस्था पर पहुंचता है। समाधिके पूर्वकालमें प्रथम अनुभव होता है कि जगत् शब्दमय है, फिर वह शब्द गंभीर ओंकार ध्वनिमें लीन हो जाता है। तत्पश्चात् वह भी सुनाई नहीं पड़ता। और जो भी सुननेमें आता है उसके वास्तविक अस्तित्व पर संदेह अनुमान होता है। इसीको अनादिनाद कहते हैं। इस अवस्थासे आगे-ही मन अन्तस्थ ब्रह्ममें लीन हो जाता है। बस—यहां सब निर्वाक् वा स्थिर हो जाता है।

स्वामीजीकी बातोंसे शिष्यको स्पष्ट प्रतीत होनेलगा कि स्वामीजी स्वयं इन अवस्थाओंमें को होकर समाधि भूमिपर अनेक वार गमनागमन कर चुके हैं। यदि ऐसा न होता तो ऐसे विशदरूपसे इन सब बातोंको कैसे सम-

आ रहे थे ? शिष्यने निर्वाक् होकर सुना व विचार किया कि स्वयं इन अवस्थाओंकी देखभाल न करनेसे कोई दूसरेको ऐसी सुगमतासे इन बातोंको समझा नहीं सकता।

स्वामीजीने फिर कहा, "अवतारतुल्य महापुरुष लोग समाधि अवस्थासे जब अहं भाव पूरित 'मैं' व 'मेरा' राज्यमें लौट आते हैं तब वे प्रथमहीं अव्यक्त नादका अनुभव करते हैं। फिर नादके स्पष्ट होनेपर ओंकार का अनुभव करते हैं। ओंकारके पश्चात् शब्दमय जगत् का अनुभव कर अन्तमें स्थूल पंचभौतिक जगत्को प्रत्यक्ष देखते हैं। परन्तु साधारण साधक लोग अनेक कष्टकर यदि किसी प्रकारसे नादपर पहुंचकर ब्रह्मको साक्षात् उपलब्धि करें भी तो फिर जिस अवस्थामें स्थूल-जगत्का प्रत्यक्ष होता है वहां वे उतर नहीं सकते हैं। ब्रह्ममेंही लीन हो जाते हैं-"क्षीरे नीरवत्।"

ऐसा वार्त्तालाप हो रहा था, इस अवसरमें महा-कवि श्रीयुत् गिरीशचन्द्रघोषजी वहां आपहुंचे। स्वामीजी उनसे अभिवादन और कुशल प्रश्नादि कर पुनः शिष्य को पाठ देने लगे। गिरीशबाबू भी एकाग्रचित्त होकर उसे सुनने लगे और स्वामीजीकी इस प्रकार अपूर्व विशदरूप

से वेदव्याख्या सुन मुग्ध होकर बैठे रहे।

पूर्व विषयका अनुसरण करके स्वामीजी फिर कहने लगे-वैदिक और लौकिक भेदसे शब्द दो अंशमें विभक्त है। "शब्दशक्तिप्रकाशिकामें"*इसका विचार मैंने देखा। इन विचारोंसे गंभीर ध्यानका परिचय मिलता है किन्तु पारिभाषिक शब्दोंके मारे शिरमें चक्कर आ जाता है।

अब गिरीशबाबूकी ओर देखकर स्वामीजी बोले, क्या जी० सी० तुमने यह सब तो नहीं पढ़ा केवल कृष्ण और विष्णुका नाम लेकर अपनी आयु बिताई।

गिरीश बाबू। और क्या पढ़ूं भाई? इतना अवसर भी नहीं और बुद्धिभी नहीं कि उन सबको समझूं परन्तु गुरुमहाराजकी कृपासे उन सब वेद वेदान्तोंको नमस्कार करके इस जन्ममें ही पार उतर जाऊंगा। वे तुमसे अनेक कार्य्य करायेंगे इसी निमित्त इन सबको पढ़ा रहे हैं। उससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।

इतनाही कह कर गिरीश बाबूने उस वृहत् ऋग्वेद

---

* न्याय प्रस्थानका विशेष ग्रन्थ।

ग्रन्थको बारम्बार प्रणाम किया और कहा, "जय वेदरूपी रामकृष्णजीकी जय"!

पाठकोंसे हम अन्यत्र कह चुके हैं कि स्वामीजी जब जिस विषयका उपदेश करते थे तब सुनने वालोंके मनमें वह विषय ऐसी गम्भीरतासे अङ्कित हो जाता था कि उस समयमें वे उस विषयको ही सबसे श्रेष्ठ अनुमान करते थे। जब ब्रह्मज्ञानके विषयमें कहा करते थे तब सुनने वाले उसका प्राप्त करनाही जीवनका एकमात्र उद्देश्य समझते थे। फिर जब भक्ति वा धर्म्म वा जातीय उन्नति प्रभृति अन्य अन्य विषयोंका प्रसंग करते थे तब श्रोता लोग उन विषयोंको ही अपने मनोंमें सबसे ऊंचा स्थान दिया करते थे और उनके ही अनुष्ठान करनेको तत्पर होजाया करते थे। अब स्वामीजीने वेदके प्रसंगमें शिष्य प्रभृतिको वेदोक्त ज्ञानकी महिमासे इतना मोहित किया कि वे (शिष्य प्रभृति) अब यह नहीं समझ सकते थे कि इससे भी और कोई श्रेष्ठवस्तु हो सकती है। गिरीश बाबूने इस विषयको लक्ष्य किया और स्वामीजीके महदुदार भाव और शिक्षा देनेकी ऐसी रीतिको वह पहिलेसे ही जानते थे। अब गिरीश

बाबूने मन ही मनमें एक नई युक्ति सोची कि जिससे स्वामीजी अपने शिष्यको ज्ञान, भक्ति और कर्म्मकी समान प्रयोजनीयता समझा दें।

स्वामीजी अनन्यमना होकर और ही कुछ विचार रहे थे। इस अवसरमें गिरीश बाबूने कहा, "हांजी नरेन्द्र, तुम्हें एक बात सुनाऊं। वेद वेदान्तको तुमने पढ़ लिया, परन्तु देशमें जो घोर हाहाकार, अन्नाभाव, व्यभिचार, भ्रूणहत्या,महापातकादि आंखोंके सामने रात दिन हो रहे हैं, तुम्हारे वेदमें क्या इनके दूर करनेकी कोई उपाय कहा है? आज तीन दिनसे उस मकानकी स्वामिनीके पास, जिसके गृहमें पूर्व प्रति दिन ५० पत्तल पड़ती थीं, रसोई पकानेकी कोई भी सामग्री नहीं है। उस मकानकी कुलस्त्रियोंको गुण्डोंने अत्याचार करके मार डाला, कहीं भ्रूणहत्या हुई, कहीं रांड़ बेवाका सारा धन बलात् लूट लिया। इन सबके रोकनेका कोई उपाय तुम्हारे वेदमें है? इस प्रकारसे गिरीश बाबू जब सामाजिक भीषण चित्रोंको चित्रित करने लगे तब स्वामीजी स्तब्ध होकर बैठ गये। जगत्‌के दुःख और कष्टको सोचते सोचते स्वामीजीकी आंखोंसे आंसू टपकने लगे। और

इसके उपरान्त बाहर उठकर चलेगये मानो वे हमसे अपने मनकी अवस्था छिपाना चाहते हैं ।

इस अवसर पर गिरीश बाबूने शिष्यको लक्ष्य करके कहा, "देखो स्वामीजी कैसे उदार प्राणके हैं ? मैं तुम्हारे स्वामीजीका केवल इसी कारणसे आदर नहीं करता कि वेद वेदान्त जानने वाले महापण्डित हैं । किन्तु यह जो जीवोंके दुःखसे रोते रोते अब वे बाहरको चले गये, मैं इसी महाप्राणताके कारण उनका सन्मान करता हूं । तुमने तो सामने ही देखा कि मनुष्योंके दुःख और कष्टकी बातोंको सुनकर दयासे उनका हृदय पूर्ण होगया और वेदवेदान्तके सब विचार कहां भाग गये ।"

शिष्य । महाशय, हम कैसे प्रेमसे वेद पढ़ रहे थे ! आपने मायाधीन जगत्की क्या सब राख धूल बातोंको सुनाकर स्वामीजीका मन दुखा दिया ।

गिरीश बाबू । क्या जगत्में ऐसे दुःख कष्टके वर्त्तमान रहने पर भी उधरको न देखकर वे एकान्तमें केवल वेदही को पढ़ेंगे ! उठा रक्खो अपने वेद वेदान्तको ।

शिष्य । आप स्वयं हृदयवान् हैं इसीसे केवल हृदय की भाषाको सुननेमें आपकी प्रीति है । परन्तु इन सब

शास्त्रोंसे, जिनकी चर्चासे लोग जगत्‌को भूल जाते हैं, आपकी प्रीति क्यों नहीं है?

गिरीश बाबू। अच्छा, ज्ञान और प्रेममें प्रभेद कहां है ये मुझे समझा दो। देखो तुम्हारे गुरु (स्वामीजी) जैसे पण्डित हैं वैसे ही प्रेमिक हैं। तुम्हारा वेद भी तो कहता है कि "सत्-चित्-आनन्द" ये तीन एक ही वस्तु हैं। देखो, स्वामीजी अभी कितना पाण्डित्य प्रकाश कर रहे थे, परन्तु जगत्‌के दुःखको सुनते ही और उनका स्मरण आते ही जीवोंके दुःखसे रोने लगे। यदि वेद वेदान्तमें ज्ञान और प्रेममें प्रभेद दिखलाया गया है तो मैं ऐसे शास्त्रोंको दूर से ही दण्डवत् करता हूं।

शिष्य निर्वाक् होकर विचारने लगा, "बहुत ठीक, गिरीश बाबूके सब सिद्धान्त यथार्थमें वेदोंके अनुकूल हैं।"

इस अवसरमें स्वामीजी फिर लौट आये और शिष्यको सम्बोधन कर कहा, "परस्पर क्या वार्त्तालाप हो रहा था? शिष्यने उत्तर दिया, "वेदोंका ही प्रसंग हो रहा था। गिरीश बाबूने इन ग्रन्थोंको नहीं पढ़ा है, परन्तु इसके सिद्धान्तोंका ठीक ठीक अनुभव कर

लिया है। यह बड़े ही विस्मयकी बात है।"

स्वामीजी। गुरुभक्ति रहनेसे सब सिद्धान्त प्रत्यक्ष होते हैं। पढ़नेकी या सुननेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। परन्तु ऐसी भक्ति व विश्वास बड़ा दुर्लभ है। जिनका गिरीश बाबूके समान भक्ति और विश्वास है, शास्त्रोंको पढ़नेकी उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु गिरीश बाबूका अनुकरण करना औरोंके लिये हानिकारक है। उनकी बातोंको मानो पर उनके आचरण देखकर कोई कार्य न करो।

शिष्य। जी, महाशय।

स्वामीजी। केवल 'जी' कहनेसे नहीं बनता। मैं जो कहता हूं उसको ठीक समझलो मूर्खके समान सब बातों पर 'जी' न कहा करो। मेरे कहने पर भी किसी बातका विश्वास न किया करो। अब ठीक समझ जाओ तबही उसको ग्रहण करो। गुरुजी महाराजने अपनी सब बातोंको समझकर ग्रहण करनेको मुझसे कहा था। सद्युक्ति, तर्क और शास्त्र जो कहते हैं, इन सबको सर्वदाही अपने पास रक्खो। सत् विचारसे बुद्धि निर्मल होती है और फिर उसी बुद्धिमें ब्रह्मका

प्रकाश होता है। अब समझे ना?

शिष्य। जी, हां। परन्तु भिन्न भिन्न लोगोंकी भिन्न २ बातोंसे मस्तिष्क ठीक नहीं रहता। अब गिरीश बाबूने कहा, "क्या होगा इन सब वेद वेदान्तको पढ़ कर?"। फिर आप कहते हैं, "विचार करो?" अब मुझे क्या करना चाहिये?

स्वामीजी। हमारी दोनोंकी बातें सत्य हैं। परन्तु दोनोंकी उक्ति दो विपरीत ओरसे आई हैं-बस। एक अवस्था है जहां युक्ति या तर्कका अन्त हो जाता है- "मूकास्वादनवत्"। और एक अवस्था है जहां वेदादि शास्त्रोंकी आलोचना या पठन पाठन करते करते सत्य वस्तुका प्रत्यक्ष होता है। तुम्हें इन सबको पढ़ना होगा तब तुमको यह बात प्रत्यक्ष होगी।

निर्बोध शिष्यने स्वामीजीके ऐसे आदेशको सुनकर और यह समझ कर कि गिरीशबाबू परास्त हुए, उनकी ओर देखकर कहा, "महाशय, आपने तो सुना कि स्वामीजीने मुझे वेदवेदान्तका पठन और विचार करने का ही आदेश दिया है।"

गिरीशबाबू। तुम ऐसे ही करे जाओ। स्वामीजीके

आशीर्वादसे तुम्हारा इसीसे सब काम ठीक हो जायगा।

अब स्वामी सदानन्द वहां आपहुंचे। उनको देखते ही स्वामीजीने कहा, "अरे, "जी, सी," से देशकी दुर्दशाओंको सुनकर मेरे प्राण बड़े व्याकुल हो रहे हैं। देशके लिये क्या तुम कुछ कर सकते हो?

सदानन्द। महाराज आदेश कीजिये, दास प्रस्तुत है

स्वामीजी। प्रथम छोटासा एक सेवाश्रम स्थापन करो, जहांसे सब दीन दुःखियोंको सहायता मिला करे और जहां पर रोगियों और सहायहीन लोगोंकी विना जातिभेदके विचारके सेवा हुआ करे। क्या समझमें आया?

सदानन्द। जो महाराजका आदेश।

स्वामीजी। जीव सेवासे बढ़कर और कोई दूसरा धर्म नहीं है। सेवाधर्मका यथार्थ अनुष्ठान करनेसे संसारका बन्धन सुगमतासे छिन्न हो जाता है-" मुक्तिः करफलायते।"

अब गिरीश बाबूसे स्वामीजी बोले, "देखो, गिरीश बाबू मनमें ऐसे भाव उदय होते हैं कि यदि जगत्के दुःखको दूर करनेको मुझे सहस्रों बार जन्म लेना पड़े

तो मैं तैयार हूं। इससे यदि किसीका तनिक भी दुःख दूर हो तो वह मैं करूंगा। ऐसा भी मनमें आता है कि केवल अपनी ही मुक्तिसे क्या होगा? सबको साथ लेकर उस मार्गको जाना होगा, क्या तुम कह सकते हो कि ऐसे भाव मनमें क्यों उदय हो रहे हैं?

गिरीशबाबू। यदि ऐसा न होता तो गुरु महाराज तुमको ही सबसे ऊंचा आधार क्यों कहा करते?

यह कहकर गिरीशबाबू अन्य कार्यके लिये चले गये।

एकादश वल्ली ।

स्थान--आलम बाज़ारका मठ ।

वर्ष-१८९७ खृष्टाब्द ।

विषय—मठपर स्वामीजीसे कुछ लोगोंका दीक्षा ग्रहण—संन्यासधर्म्म विषयपर स्वामीजीका उपदेश—त्याग ही मनुष्यजीवनका उद्देश्य—"आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" सर्वस्व त्यागही संन्यास—संन्यास ग्रहण करनेका कोई कालाकाल नहीं—"यदहरेव विरजेद् तदहरेव प्रव्रजेत्"—चार प्रकारके संन्यास—भगवान बुद्धदेवजीके पश्चात् ही विविदिषा संन्यासकी वृद्धि—बुद्धदेवजीके पहिले संन्यास आश्रमके रहने पर भी यह नहीं समझा जाता था कि त्याग या वैराग्यही मनुष्यजीवनका लक्ष्य है—"निकम्मे संन्यासी गणसे देशका कोई कार्य नहीं होता" इत्यादि सिद्धान्तका खण्डन—यथार्थ संन्यासी अपनी मुक्तिकी भी उपेक्षाकर जगत्का कल्याण करते हैं ।

पहिले ही कह आये हैं कि जब स्वामीजी प्रथमवार विलायतसे कलकत्तेको लौटे थे, तब उनके पास बहुतसे उत्साही युवकोंका गमनागमन रहता था । यह देखा गया है कि इस समय स्वामीजी अविवाहित युवकोंको ब्रह्मचर्य व त्याग सम्बन्धी उपदेश किया करते थे और

संन्यासग्रहण अर्थात् अपनी मोक्ष व जगतके कल्याणके लिये सर्वस्व त्याग करनेको बहुधा उत्साहित किया करते थे। हमने अनेक समय उनको कहते सुना कि संन्यास ग्रहण न करनेसे किसीको यथार्थ आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। केवल यही नहीं-पर बिना संन्यास ग्रहणके बहुजनहितकारी तथा बहुजनसुखकारी किसी कार्यका अनुष्ठान या उसका सिद्धिलाभ नहीं हो सकता। स्वामीजी सर्वदा उत्साही युवकोंके सामने त्यागके उच्च आदर्शको रखते थे, और किसीको संन्यास लेनेकी इच्छा प्रकाश करने पर उसको बहुत उत्साहित करते थे औरउस पर कृपा भी करते थे। कई एक भाग्यवान पुरुषोंने उनके उत्साहपूर्ण वचनसे उस समय संसाराश्रमका त्याग किया। इनमेंसे जिन चारोंको स्वामीजीने पहिले संन्यास दिया, उनके संन्यासव्रत ग्रहण करनेके दिन शिष्य आलम बाज़ार मठमें उपस्थित था। वह दिन शिष्यके मनमें अभी तक जागृत है।

आजकल श्रीरामकृष्ण मण्डलीमें स्वामी नित्यानन्द, विरजानन्द, प्रकाशानन्द और निर्भयानन्द नामसे जो लोग सुपरिचित हैं, उन्होंने ही उस दिन संन्यास-ग्रहण

किया था। मठके सन्यासियोंसे शिष्यने बहुधा सुना है कि स्वामीजीके गुरुभाइयोंने उनसे बहुत अनुरोध किया कि इनमेंसे एकको संन्यास दीक्षा न दी जाय। इसके प्रत्युत्तरमें स्वामीजीने कहा था, " यदि हम पापी, तापी दीन, दुखी और पतितोंका उद्धार साधन करनेसे हट जायें तो फिर इनको कौन देखेगा। तुम इस विषयमें किसी प्रकारकी बाधा न डालो। " स्वामीजीकी बलवती इच्छा ही पूर्ण हुई। अनाथशरण स्वामीजी अपने कृपा गुणसे उनको सन्यास देनेमें कृतसंकल्प हुए।

शिष्य आज दो दिनसे मठमें ही रहता है। स्वामीजीने शिष्यसे कहा, " तुम तो ब्राह्मण पुरोहितोंमेंसे हो कल तुम ही इनकी श्राद्धादि क्रिया करा देना और अगले दिन मैं इनको संन्यासाश्रममें दीक्षित करूंगा। आज पोथी पाथी पढ़कर सब देखभाल कर लो। " शिष्यने स्वामीजीकी आज्ञा शिरोधार्य करली।

संन्यासव्रत धारण करनेको कृतनिश्चय होकर उन चार ब्रह्मचारियोंने पूर्व दिन अपने मस्तक मुण्डन कराये और गङ्गास्नान कर शुभ्रवस्त्र धारण करके स्वामीजीके चरण कमलोंकी वन्दना की और स्वामीजीके स्नेहाशी-

वादको प्राप्त करके श्राद्धक्रियाके निमित्त उत्साहित हुए।

यहां यह कहना अधिक नहीं होगा कि जो शास्त्रानुसार संन्यास ग्रहण करते हैं, उनको इस समय अपनी श्राद्धक्रिया आप ही करनी पड़ती है क्योंकि संन्यास लेनेमें उनका फिर लौकिक या वैदिक किसी [illegible] पर कोई अधिकार नहीं रहता है। पुत्र-पौत्रादिकृत श्राद्ध या पिण्डदानादि क्रियाका फल उनको स्पर्श नहीं करता। इस लिये संन्यास लेनेके पहिले अपनी श्राद्धक्रिया अपने हीको करनी पड़ती है, अपने पैरों पर अपना पिण्ड [illegible] कर संसारके [illegible] अपने शरीरके, पूर्व सम्बन्धों का भी संकल्प [illegible] निःशेष विलोप करना पड़ता है। इस क्रियाका [illegible] ग्रहण की अधिवास क्रिया कह सकते हैं। शिष्य [illegible] कि इन वैदिक कर्म्म-काण्ड पर स्वामीजीका पूर्ण विश्वास था, इन क्रिया काण्डोंके ठीक ठीक न होने पर बड़े अप्रसन्न होते थे। आजकल बहुत लोगोंका यह विचार है कि गेरुवा वस्त्र धारण करनेसे ही सन्यासदीक्षा होजाती है, परन्तु स्वामीजीका ऐसा विचार कभी नहीं था। बहुत प्राचीन कालसे

प्रचलित, ब्रह्मविद्यासाधनोपयोगी, संन्यासव्रत ग्रहण करनेके प्रागनुष्ठेय, गुरुपरम्परागत नैष्ठिक संस्कारोंको ब्रह्मचारियोंसे ठीक ठीक साधन कराते थे । हमने यह भी सुना है कि परमहंसजीके अन्तर्धान होने पर स्वामीजीने उपनिषदादि शास्त्रोंमें लिखित संन्यास लेनेकी पद्धतियोंको मंगवाकर उनके अनुसार गुरु महाराजके चित्रको सम्मुख रखकर अपने गुरुभाइयोंके साथ वैदिक मतसे संन्यास ग्रहण किया था।

आलम बाज़ार मठके दोमंज़िले पर जल रखनेके स्थानमें श्राद्धक्रियाकी उपयोगी सब सामग्री एकत्र की गई थी । स्वामी नित्यानन्दजीने पितृपुरुषोंकी श्राद्ध क्रिया अनेकवार की थी इस कारण आवश्यकीय द्रव्यको एकत्रित करनेमें कोई त्रुटि नहीं हुई, स्वामीजीके आदेशसे शिष्य स्नान करके पुरोहितका कार्य करनेको तत्पर हुआ । मन्त्रादि का ठीक ठीक पाठ होने लगा। स्वामीजी कभीर देख जाने लगे। श्राद्धक्रियाके अन्तमें जब चारों ब्रह्मचारी अपने अपने पिण्डोंको अपने अपने पांव पर रखकर आजसे सांसारिक दृष्टिसे मृतवत् प्रतीत हुए, तब शिष्यका हृदय बड़ा व्याकुल हुआ

और संन्यासाश्रम की कठोरताका स्मरण करके मोह पूरित होगया। पिण्डोंको उठाकर जब वे गङ्गाजीको चले गये तब स्वामीजी शिष्यको व्याकुल देखकर बोले, "यह सब देखकर तेरे मनमें भय उपजा है-ना?" शिष्यके सिर झुकाने पर स्वामीजी बोले, "आजसे इन सबकी सांसारिक विषयसे मृत्यु हुई। कलसे इनका नवीन देह, नवीन चिन्ता, नवीन परिच्छेद होगा। ये ब्रह्मवीर्यसे दीप्त होकर प्रज्वलित अग्निके समान अवस्थान करेंगे। 'न धनेन न चेज्यया त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः'।"

स्वामीजीकी बातोंको सुनकर शिष्य निर्वाक खड़ा रहा। संन्यासकी कठोरताको स्मरण कर उसकी बुद्धि स्तम्भित हो गई। शास्त्रज्ञानका अहंकार दूर हुआ। वह सोचने लगा कि कहने और करनेमें बहुत भेद है।

इसी बीचमें वे चारों ब्रह्मचारी जो श्राद्धक्रिया कर चुके थे, गंगामें पिण्डादिको डालकर लौट आये और स्वामीजीके चरणकमलोंकी वन्दना की। स्वामीजी आशीर्वाद देकर बोले, "तुम मनुष्यजीवनके महोच्चोद्देश को ग्रहण करनेके लिये उत्साहित हुए हो; धन्य है तुम्हारा

पंश, और धन्य है तुम्हारी गर्भधारिणी माता। 'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था।"

उस दिन रात्रिको भोजन करनेके पश्चात् स्वामीजी केवल संन्यासधर्मके विषय परही वार्त्तालाप करने लगे। संन्यास लेनेके अभिलाषी ब्रह्मचारियोंकी ओर देखकर बोले, "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" यही संन्यासका यथार्थ उद्देश्य है। इस बातको वेदवेदान्त घोषणा कर रहे हैं कि संन्यास ग्रहण न करनेसे कोई कभी ब्रह्मज्ञ नहीं हो सकता। जो कहते हैं कि इस संसारकाभी भोग करना है और ब्रह्मज्ञभी बनना है उनकी बात कभी न मानो। प्रच्छन्नभोगियोंके ऐसे स्तोकवाक्य होते हैं। जिनके मनमें तनिकभी संसारभोग करनेकी इच्छा है वा लेशमात्र कामना है, वे ही इस कठिन पथसे डरजाते हैं, इस लिये अपने मनको सान्त्वना देनेको कहते फिरते हैं कि इन दोनों पंथमें साथ साथ चलना होगा। ये सब उन्मत्तोंके प्रलाप हैं—अशास्त्रीय व अवैदिक मत हैं। बिना त्याग मुक्ति नहीं। बिना त्यागके पराभक्ति नहीं। त्याग-त्याग—"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"। गीता भी कहती है 'काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः'। सांसा-

रिके झगड़ोंको बिना त्यागे किसीकी मुक्ति नहीं होती। जो संसाराश्रममें बंधे रहते हैं वे यह सिद्ध करते हैं कि वे किसी न किसी प्रकारकी कामनाके दास बनकर संसारमें ऐसे फंसे हैं। यदि ऐसाही न होगा तो संसारमें ही फिर क्यों रहेंगे ? कोई कामिनीके दास, कोई अर्थके दास, कोई मान, यश, विद्या व पांडित्यके दास बनकर हैं। इस दासत्वको छोड़कर बाहर निकलनेसेही वे मुक्तिके पथपर चल [illegible] हैं। लोग कितनाही क्यों न कहें पर मैं भली भांति समझ गया हूं कि जब तक मनुष्य इन [illegible]को त्यागकर संन्यास न ग्रहण करते तब तक किसी [illegible] भी उसका परित्राण नहीं है और किसी [illegible] से भी ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

[illegible] महाशय, क्या संन्यास ग्रहण करनेसेही सिद्धिलाभ होता है?

स्वामीजी। सिद्धि प्राप्त होती है या नहीं यह पीछेकी बात है। जब तक तुम भीषण संसारकी सीमासे बाहर नहीं आते जब तक वासनाके दासत्वको नहीं छोड़सकते तब तक भक्ति या मुक्तिकी प्राप्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। ब्रह्मज्ञोंको सिद्धि ऋद्धि अति तुच्छ बात है।

शिष्य । महाशय, क्या संन्यासमें कुछ कालाकाल या प्रकारभेद भी है ?

स्वामीजी । संन्यासधर्मकी साधनामें किसी प्रकारका कालाकाल नहीं है । श्रुति कहती है, "यदहरेव विरजेत्, तदहरेव प्रव्रजेत्" जबही वैराग्यका उदय हो तभी प्रव्रज्या करना उचित है । योगवाशिष्ठमेंभी है -

"युवैव धर्मशीलः स्यात् अनित्यं खलु जीवनम् ।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति ॥ "

अर्थात् " जीवनकी अनित्यताके कारण युवाकालमें ही धर्मशील बनो । कौन जानता है कब किसका शरीर जायेगा ? " शास्त्रमें चार प्रकारके संन्यासका विधान पाया जाता है । [१] विद्वत् संन्यास [२] विविदिषा-संन्यास [३] मर्कट संन्यास [४] आतुर संन्यास । अचानक यथार्थ वैराग्यके उत्पन्न होतेही संन्यास लेकर चले जाना (यह पूर्व जन्मके संस्कारसेही होता है); इसीको विद्वत् संन्यास कहते हैं । आत्मतत्त्व जाननेकी प्रबल इच्छासे शास्त्रपाठ या साधनादि द्वारा अपना स्वरूप जाननेको किसी ब्रह्मज्ञ पुरुषसे संन्यास लेकर स्वाध्याय व साधन भजन करने लगना इसको विविदिषा

संन्यास कहते हैं । संसारके कष्टसे या स्वजनवियोगमें या और किसी कारणसे किसी किसीने संन्यास लिया है परन्तु यह वैराग्य दृढ़ नहीं होता । इसका नाम मर्कट-संन्यास है । श्रीठाकुरजी महाराज जैसा कहा करते थे, "वैराग्य हुआ, कहीं दूर देशमें जाकर फिर कोई नौकरी करली, फिर इच्छा होनेपर स्त्रीको बुला लिया या द्वितीय विवाह करलिया ।" एक और भी प्रकारका संन्यास है । किसीकी मुमुर्षु अवस्था है, रोगशय्या पर शायित है बचनेकी कोई आशा नहीं; ऐसेके लिये आतुर संन्यास विधि है । यदि वह मरजाये तो पवित्र संन्यासव्रत ग्रहण करके मरेगा; दूसरे जन्ममें इस पुण्यके कारण अच्छा जन्म प्राप्त होगा । और यदि बच जाये तो फिर संसारमें न जाकर ब्रह्मज्ञानके लिये संन्यासी बनकर दिन व्यतीत करेगा । स्वामी शिवानन्दजीने तुम्हारे काकाको यह आतुर संन्यास दिया था । वह मरगया परन्तु इस प्रकार से संन्यास लेनेके कारण उसको उच्च जन्म मिलेगा । संन्यास न लेनेसे आत्मज्ञान लाभ करनेका दूसरा उपाय नहीं है ।"

शिष्य । महाशय, गृहस्थियोंको फिर क्या उपाय है ?

स्वामीजी । सुकृतिसे किसी न किसी जन्ममें उनका वैराग्य होगा। वैराग्यके आतेही काम बन जाता है अर्थात् जन्म मरणरूप प्रहेलिकाके पार पहुंचनेमें देर नहीं होती, परन्तु सब नियमोंके दो एक व्यतिक्रम भी रहते हैं। गृहस्थधर्म ठीक ठीक पालन करतेभी दो एक पुरुषोंको मुक्त होने देखा गया है; यथा हमारे यहां नागमहाशय हैं।

शिष्य । महाशय, उपनिषदादि ग्रन्थोंमेंभी वैराग्य व संन्यास सम्बन्धी विशद उपदेश नहीं पाया जाता है।

स्वामीजी । पागलके समान क्या बकता है ? वैराग्य ही तो उपनिषद्का प्राण है। विचारजनित प्रज्ञाको प्राप्त करनाही उपनिषद् ज्ञानका चरम लक्ष्य है । परन्तु मेरा विश्वास यह है कि भगवान् बुद्धदेवजीके समयसे ही भारतवर्षमें इस त्यागव्रतका विशेष प्रचार हुआ है और वैराग्य व संसार वितृष्णाको ही धर्मका चरम लक्ष्य माना गया है। बौद्धधर्मके इस त्याग तथा वैराग्यको हिन्दुधर्मने अपनेमें लय करलिया है। भगवान् बुद्धके समान त्यागी महापुरुष पृथ्वी पर और कोई नहीं जन्मा।

शिष्य । तो क्या महाशय, बुद्धदेवजीके जन्मसे पहिले इस देशमें त्याग व वैराग्य कम था और क्या

संन्यासी नहीं थे ?

स्वामीजी । यह कौन कहता है ? संन्यासाश्रम था परन्तु साधारणको विदित नहीं था कि यह ही जीवनका चरम लक्ष्य है । वैराग्यपर उनकी दृढ़ता नहीं थी, विवेक पर निष्ठा नहीं थी । इसी कारण बुद्धदेवजीको कितने योगियों व साधुओंके पास जानेपरभी कहीं शांति नहीं मिली । तब 'इहासने शुष्यतुमे शरीरं' कह कर आत्म-ज्ञान लाभ करनेको स्वयं ही बैठ गये और प्रबुद्ध होकर उठे । भारतवर्षमें सन्यासियों के जो मठादि देखते हो वे सब बौद्धधर्मके अधिकारमें थे । अब हिन्दुओंने उनको अपने रंगमें रंगकर अपना कर लिया है । भगवान् बुद्धदेवसेही यथार्थ संन्यासाश्रमका सूत्रपात हुआ है । वे ही संन्यासाश्रमको मृतकंकालास्थिमें प्राणका संचार कर-गये हैं ।

स्वामीजीके गुरु भाई स्वामी रामकृष्णानन्द जीने कहा, "बुद्धदेवसे पहिले भी भारतमें चारों आश्रमोंके प्रचलित होनेका प्रमाण संहिता पुराणादि देते हैं ।" प्रति उत्तरमें स्वामीजीने कहा, "मन्वादि संहिता, बहुतसे पुराण और महाभारतके भी बहुतसे अंश आधुनिक

शास्त्र हैं। भगवान् बुद्ध इनसे बहुत पहिले हुए हैं।"

रामकृष्णानन्द। यदि ऐसा ही होता तो बौद्धधर्मकी समालोचना वेद, उपनिषद्, संहिता और पुराणोंमें अवश्य होती। जब इन ग्रन्थोंमें बौद्धधर्मकी आलोचना नहीं पाई जाती, तब तुम कैसे कहते हो कि बुद्धदेवजी इन सबोंसे पूर्व थे? दो चार प्राचीन पुराणादिमें बौद्धमतका वर्णन आंशिक रूपसे है परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दुओंके संहिता व पुराणादि आधुनिक शास्त्र हैं।

स्वामीजी। इतिहासको पढ़ो, देखोगे कि हिन्दूधर्म बुद्धदेवके सब भावोंको पचाकर इतना बड़ा होगया है।

रामकृष्णानन्द। मेरा अनुमान यह है कि बुद्धदेवजी त्याग-वैराग्यको अपने जीवनमें ठीक ठीक अनुष्ठान करके हिन्दूधर्मके कुल भावोंको केवल सजीव कर गये हैं।

स्वामीजी। परन्तु यह कथन प्रमाणित नहीं हो सकता। क्योंकि बुद्धदेवसे पहिलेका कोई प्रमाणिक इतिहास नहीं मिलता। इतिहासका ही प्रमाण माननेसे यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि प्राचीन कालके घोर अंधियारेमें एक मात्र भगवान् बुद्धदेवने ही ज्ञानालोकसे प्रदीप्त होकर

अवस्थान किया है।

अब फिर संन्यासधर्म सम्बन्धी प्रसंग होने लगा। स्वामीजी बोले. " संन्यासकी उत्पत्ति कहींसे ही क्यों न हो, इस त्याग व्रतके आश्रयसे ब्रह्मज्ञ होना ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है। इस संन्यास ग्रहणमें ही परमपुरुषार्थ है। वैराग्य उत्पन्न होने पर जिनका संसारसे अनुराग हट गया है वे ही धन्य हैं।

शिष्य। महाशय आजकल लोग कहते हैं कि त्यागी संन्यासियोंकी संख्या बढ़ जानेसे देशकी व्यवहारिक उन्नतिमें हानि हो रही है। साधुओंको गृहस्थियोंके मुखापेक्षी और निष्कर्मी होकर चारों ओर फिरते देखकर वे लोग कहते हैं. " वे [संन्यासीगण] समाज व स्वदेशको उन्नतिके निमित्त किसी प्रकारके सहायक नहीं होते।"

स्वामीजी। मुझे यह तो पहिले समझा दो कि लौकिक या व्यवहारिक उन्नतिका अर्थ क्या है।

शिष्य। पाश्चात्यमें जिस प्रकार विद्याकी सहायतासे देशमें अन्नवस्त्रका संस्थान करते हैं; विज्ञानकी सहायतासे वाणिज्य, शिल्प, वस्त्रादिक, रेल, टेलीग्राफ़ [तार]

इत्यादि नाना विषयोंकी उन्नति कररहे हैं, उसी प्रकारसे ही करना।

स्वामीजी। क्या ये सब मनुष्यमें रजोगुणके अभ्युदय न होनेसे होता है? सारे भारतवर्षमें फिरकर देखा पर कहीं भी रजोगुणका विकाश नहीं! केवल तमोगुण है। घोर तमोगुणसे सर्वसाधारण भरे हुये हैं। संन्यासियोंने ही रजोगुण व सत्त्वगुण रहते देखा है। वे ही भारतके मेरुदण्ड हैं। यथार्थ संन्यासी गृहस्थियोंके उपदेशक हैं। उनसे उपदेश और ज्ञानालोक प्राप्त करके पूर्वमें गृहस्थी लोग जीवनसंग्राममें सफल मनोरथ हुये हैं। संन्यासियोंके अनमोल उपदेशके बदलेमें गृहस्थी उनको अन्नवस्त्र देते हैं। यदि ऐसा आदान प्रदान न रहता तो इतने दिनमें भारतवासीभी अमेरिकाके आदिम निवासियोंके समान लोप हो जाते। संन्यासियोंके मुट्ठी भर अन्न देनेके कारण ही गृहस्थी लोग अभी तक उन्नतिके मार्गपर चल रहे हैं। संन्यासी लोग कर्म्महीन नहीं हैं वरन वे ही कर्म्मके स्रोत हैं। उनके जीवन या कार्य्यमें ऊंचे आदर्शोंको परिणत होते देख और उनसे उच्च भावोंको ग्रहण करके गृहस्थी लोग इस संसारके जीवन संग्राममें समर्थ हुये हैं और

हो रहे हैं। पवित्र संन्यासियोंको देखकर गृहस्थीभी उन पवित्र भावोंको अपने जीवनमें परिणत करते हैं और ठीक ठीक कर्म करनेको तत्पर होते हैं। संन्यासी अपने जीवनमें ईश्वरके निमित्त और जगत्के कल्याणके निमित्त सर्वत्यागरूप तत्वको प्रतिफलित करके गृहस्थियोंको सब विषयमें उत्साहित करते हैं और इसके बदलेमें वे उनसे मुट्ठी भर अन्न लेते हैं। फिर उसी अन्नको उपजानेकी प्रवृत्ति व शक्तिभी देशके लोगोंमें सर्वत्यागी संन्यासियोंके स्नेहाशीर्वादसे ही बढ़ रही है। बिना विचारे ही लोग संन्यास-संस्थाकी निन्दा करते हैं। अन्यान्य देशमें चाहे जो कुछ क्यों न हो, पर यहां संन्यासियोंके पतवार पर रहनेके कारण ही संसार सागरमें गृहस्थोंकी नौका नहीं डूबती।

शिष्य। महाशय, लोककल्याणमें तत्पर यथार्थ संन्यासी कहां मिलता है?

स्वामीजी। यदि सहस्र वर्षके अन्दरभी गुरुमहाराजजीके समान कोई संन्यासी महापुरुष जन्म लेलेते हैं तो सब कमी पूरी हो जाती है। वे जो उच्च आदर्श और भावोंको छोड़ जाते हैं उनके जन्मसे सहस्र वर्ष तक

कारण यही ।

लोग उनको ही ग्रहण करते रहेंगे । इस संन्यासपद्धतिके इस देशमें रहनेके कारण ही यहां उनके समान महापुरुष लोग जन्म ग्रहण करते हैं । दोष सब ही आश्रमोंमें है पर किसीमें कम किसीमें अधिक । दोष रहने परभी यह आश्रम जो और आश्रमोंके शीर्षस्थानके अधिकारको प्राप्त हुआ है, इसका कारण क्या है ? यथार्थ संन्यासी अपनी मुक्तिकीभी उपेक्षा करते हैं—जगत्के मंगलके लियेही उनका जन्म होता है । यदि ऐसे संन्यासाश्रमके भी तुम कृतज्ञ न हो तो तुम्हें धिक्कार, कोटि कोटि धिक्कार है ।

इन बातोंको कहते ही स्वामीजीका मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठा । संन्यास आश्रमके गौरवप्रसंगसे स्वामीजी मानो मूर्तिमान् संन्यासरूपमें शिष्यके सन्मुख प्रतिभात होने लगे । इस आश्रमके गौरवको अपने मनमें अनुभव कर मानो अन्तर्मुखी होकर अपने आप ही मधुर स्वरसे आवृत्ति करने लगे—

" वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तः
भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ।
अशोकमन्तःकरणे चरन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ "

फिर कहने लगे, "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ही" सन्यासियोंका जन्म होता है। संन्यासग्रहण करके जो इस ऊंचे लक्ष्यसे भ्रष्ट होता है—'वृथैव तस्यजीवनं'। जगत्‌में संन्यासी क्यों जन्म लेते हैं? औरोंके निमित्त अपना जीवनदान करनेको, जीवके आकाशभेदी क्रन्दनके दूर करनेको, विधवाके आंसू पूंछनेको, पुत्र वियोगसे विधुराओंके मनमें शान्ति देनेको, सर्वसाधारणको जीवन संग्राममें उपयोगी करनेको, शास्त्रके उपदेशोंको फैलाकर सबका ऐहिक व पारमार्थिक मंगल करनेको और ज्ञानालोकसे सबके भीतर जो ब्रह्मसिंह सुप्त हैं उसको जगानेका।"

फिर अपने भाइयोंको लक्ष्य करके कहने लगे, "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" हम लोगोंका जन्म हुआ है। बैठे बैठे क्या कर रहे हो? उठो, जाग जाओ, चौकन्ने होकर औरोंको चिताओ। अपने नरजन्मको सफल करो "उत्तिष्ठत-जाग्रत-प्राप्य वरान् निबोधत।"

द्वादश वल्ली।

स्थान—कलकत्ता, बलराम बाबूका भवन।

वर्ष-१८९७।

विषय—गुरु गोविन्दजी शिष्योंको किस प्रकारकी दीक्षा देते थे-उस समय सर्वसाधारणके मनमें उन्होंने एकही प्रकारकी स्वार्थ चेष्टाको जगाया था-सिद्धाई लाभ करनेकी अपकारिता-स्वामीजीके जीवनमें परिदृष्ट दो अद्भुत घटनायें-शिष्यको उपदेश-भूत प्रेतके ध्यानसे भूत और 'मैं नित्यमुक्त बुद्ध आत्मा हूं' ऐसा ध्यान सर्वदा करनेसे ब्रह्म बनता है।

स्वामीजी आज दो दिनसे बागबाजारमें बलराम बसुके भवनमें ठहरे हैं। इसलिये शिष्यका विशेष सुभीता होनेसे प्रतिदिन वहां गमनागमन रहता था। आज सायं कालसे कुछ पहिले स्वामीजी छतपर टहल रहे हैं। उनके साथ शिष्य और अन्य चार पांच लोगभी हैं, आज बड़ी गरमी है, स्वामीजीके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं है। मन्दमन्द दक्षिणी पवन चल रही है। टहलते टहलते स्वामीजीने गुरुगोविन्दजीका प्रसंग आरम्भ किया और ओजस्विनी

भाषामें कुछ कुछ वर्णन करते हुए कहने लगे कि उनके कैसे त्याग, तपस्या, तितिक्षा और प्राणनाशक परिश्रमके फलसे सिक्खोंका पुनरुत्थान हुआ था, उन्होंने कैसे मुसलमानधर्ममें दीक्षित लोगोंकोभी दीक्षा दी और हिन्दू बनाकर सिक्ख जातिमें मिला लिया कैसे उन्होंने नर्मदाके तटपर अपनी मानव लीला समाप्त की। गुरुगोविन्दजी से दीक्षित जनोंमें उस समय कैसी एक महाशक्तिका संचार होता था उसका उल्लेख कर स्वामीजीने सिक्ख जातियोंमें प्रचलित एक दोहा सुनाया—

"सवा लाख पर एक चढ़ाऊं।
जब गुरु गोविन्द नाम सुनाऊं॥"

अर्थात् गुरुगोविन्दजीसे नाम (दीक्षा) सुनकर प्रत्येक मनुष्यमें सवालाख मनुष्योंसे अधिक शक्ति संचारित होती थी। अर्थात् उनसे दीक्षा ग्रहण करने पर उनकी शक्तिसे यथार्थ धर्मप्राणना उपस्थित होती थी और प्रत्येक शिष्यका हृदय ऐसा वीरभावसे पूरित हो जाता था कि वह उस समय सवा लाख विधर्मियोंको पराजित कर सकता था। धर्मकी महिमा बखाननेवाली बातोंको कहते कहते उनके उत्साह पूरित नयनोंसे मानो तेज निकल

रहा था। श्रोतृवर्ग स्तब्ध होकर स्वामीजीके मुखकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। स्वामीजीमें कैसा अद्भुत उत्साह व शक्ति थी। जब जिस विषयका प्रसंग करते थे तब उसीमें ऐसे तन्मय हो जाते थे कि यह अनुमान होता था कि उन्होंने उसी विषयको और सब विषयोंसे बड़ा निश्चय किया है और उसे लाभ करना ही मनुष्य जीवनका एक मात्र लक्ष्य है।

कुछ देर पश्चात् शिष्यने कहा, "महाशय, गुरु-गोविन्दजीने हिंदू व मुसलमान दोनोंको अपने धर्ममें दीक्षित करके एक ही उद्देश पर चलाया था, यह बड़ी अद्भुत घटना है। भारतके इतिहासमें ऐसा दूसरा दृष्टांत नहीं पाया जाता।"

स्वामीजी। जब तक लोग अपनेमें एक ही प्रकारकी स्वार्थचेष्टा अनुभव न करें तब तक कभी एकताबद्ध नहीं हो सकते। जब तक उनका स्वार्थ एक न हो तब तक सभा, समिति और वक्तृतासे साधारण लोगोंको एक नहीं किया जा सकता। गुरुगोविंदजीने उस समय क्या हिंदू क्या मुसलमान सब हीको समझाया था कि कैसा घोर अत्याचार व अविचारके राज्यमें सब कोई

बच रहे हैं। गुरुगोविंदजीने किसी प्रकारकी स्वार्थ चेष्टा की सृष्टि नहीं की। सर्वसाधारणमें केवल इसको समझा ही दिया था। इस लिये हिन्दू मुसलमान सब उनको मानते हैं। वे शक्तिके साधक थे। भारत-इतिहासमें उनके समान विरला ही दृष्टान्त मिलेगा।

अनन्तर रात्रि होनेपर स्वामीजी सबके साथ द्वितीय खण्डकी बैठकमें उतर आये। उनके आसन ग्रहण करने पर सब उन्हें फिर घेर कर बैठ गये। अब सिद्धाईके विषयपर प्रसंग आरम्भ हुआ। स्वामीजी बोले,"सिद्धाई या विभूति मनके थोड़े ही संयमसे लाभ होती है।" शिष्यको लक्ष्य करके बोले, "क्या तू औरोंके मनकी बात जाननेकी विद्या सीखेगा? चार पांच ही दिनमें तुझे यह सिखला सकता हूं।

शिष्य। इससे क्या उपकार होगा?

स्वामीजी। क्यों? औरोंको मनकी बात जान सकेगा।

शिष्य। क्या इससे ब्रह्मविद्या लाभ करनेमें कोई सहायता मिलेगी?

स्वामीजी। कुछभी नहीं।

शिष्य। तब वह विद्या सीखनेसे मेरा कोई प्रयोजन

नहीं। परन्तु आपने सिद्धाईके विषयमें जो कुछ प्रत्यक्ष किया है या देखा है उसको सुननेकी इच्छा है।

स्वामीजी। एक बार मैं हिमालयमें भ्रमण करते समय किसी पहाड़ी गांवमें एक रात्रिके लिये ठहरा हुआ था। सायंकाल होनेपर गांवमें ढोलका शब्द सुना तो घरवालेसे पूछनेपर मालूम हुआ कि गांवमें किसी मनुष्य पर "देवता चढ़ा" है। घरवालेके आग्रहसे और अपना कौतुक निवारण करनेके लिये कि बात क्या है, मैं देखने-को गया। जाकर देखा कि बड़ी भीड़ लगी है। लम्बे घूंघुरबालवाले एक पहाड़ीको दिखाकर कहा कि इसी पर देवता चढ़ा है। मैंने देखा कि उसके पास ही एक कुल्हाड़ीको आगमें लाल कर रहे थे फिर देखा कि उस लाल कुल्हाड़ीसे उपदेवताविष्ट उस मनुष्यके शरीरको स्थान स्थान पर जला रहे हैं और बाल परभी उसे छुआ रहे हैं। परन्तु आश्चर्य यह था कि न उसका कोई अंग या बाल जलता था न उसके चेहरेसे कोई कष्टका चिन्ह प्रकट होता था। मैं तो देखते ही निर्वाक रह गया। इस अवसरमें गांवके मुखियाने मेरे पास आकर हाथ जोड़-कर कहा, "महाराज, आप कृपया इसका भूत बताए

कीजिये ।" मैं तो बात सुनकर घबड़ा गया । फिर क्या करता, सबके कहने पर मुझे उस देवताविष्ट मनुष्यके पास जाना पड़ा। परन्तु जाकर उस कुल्हाड़ीकी परीक्षा करनेकी इच्छाकी। उसमें हाथ लगाते ही मेरा हाथ झुलस गया (तब तो कुल्हाड़ी तनिक काली पड़ गई थी) तो भी मारे जलनके बेचैन होगया। जो कुछ मेरी तर्कयुक्ति थी वह सब लोप होगई । क्या करूं जलनके मारे व्याकुल होकरभी उस मनुष्यके शिरपर अपना हाथ रखकर कुछ देर जप किया । परन्तु आश्चर्य यह है कि ऐसा करनेसे १०।१२ मिनटमें ही वह अच्छा हो गया । तब गांव वालोंकी मेरे ऊपर भक्तिका क्या ठिकाना था। वे तो मुझे भगवान् ही समझने लगे। परन्तु मैं इस घटनाको कुछभी नहीं समझ सका। अन्तमें और कुछ न कहकर घरवालेके साथ झोंपड़ी में लौट आया। तब रातके कोई १२ बजे होंगे। आते ही लेट गया । परन्तु जलनके मारे और इस घटनाका कोई भेद न निकाल सकनेके कारण नींद नहीं आई। जलती हुई कुल्हाड़ीसे मनुष्यका शरीर दग्ध नहीं होता यह देखकर चिन्ता करने लगा, "There are more things in heaven and earth, than

dreamt of in your philosophy" 'पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें ऐसी अनेक घटनायें हैं जिनका सन्धान दर्शनशास्त्रोंने स्वप्नमेंभी नहीं पाया।'

शिष्य। आगे इस विषयका क्या कोई सिद्धान्त कर सके थे?

स्वामीजी। नहीं, आज बातों बातोंमें यह स्मरण आया, इस लिये तुमसे कह दिया।

अनन्तर स्वामीजी कहने लगे, "ठाकुरजी महाराज सिद्धाइयोंकी बड़ी निन्दा किया करते थे। यह कहा करते थे कि इन शक्तियोंके प्रकाशकी ओर मन लगाये रखनेसे कोई परमार्थतत्त्वोंको नहीं पहुंचता है। परन्तु मनुष्यका मन ऐसा दुर्बल है कि गृहस्थियोंका तो कहना ही क्या है, साधुओंमेंभी चौदह आने लोग सिद्धाईके उपासक होते हैं। पाश्चात्य देशोंमें लोग इन जादुओंको देखकर निर्वाक् रह जाते हैं। सिद्धाई लाभ करना बुरा है और यह धर्मपथमें विघ्न डालता है। यह बात ठाकुरजी महाराजके कृपया समझानेके कारण ही मैं समझ सका हूं। इसी हेतु क्या तुमने देखा नहीं कि ठाकुरजीकी सन्तानोंमेंसे कोईभी उधरको ध्यान नहीं देता?

इस अवसरमें स्वामी योगानन्दजी स्वामीजीसे बोले, "मन्द्राजमें एक ओझासे जो तुम्हारी साक्षात् हुई वह कहानी इस गंवारको सुनाओ।"

शिष्यने इस विषयको पहिले नहीं सुना था। इस कारण उसको कहनेके लिये स्वामीजीको पकड़कर बैठ गया। स्वामीजीभी अगत्या उससे कहने लगे-'मंद्राजमें मैं जब मन्मथ बाबूके भवनमें था तब एक दिन रात्रिमें स्वप्न देखा कि हमारी माताजीका देहान्त होगया है। मनमें बड़ा दुःख हुआ। तब मठको ही पत्रादि बहुत कम भेजा करता था तो घरकी बात तो दूर रही। स्वप्नकी बात मन्मथसे कहने पर इस विषयके संवादके निमित्त उसने कलकत्तेको तार भेजा। क्योंकि स्वप्न देखकर मन बहुत ही घबड़ा रहा था। इधर मंद्राजके बन्धु लोग मेरे अमेरिका जानेका सब प्रबंध करके जल्दी मचा रहे थे। परन्तु माताजीकी क्षेमकुशलका संवाद न मिलनेसे मेरा जानेको मन नहीं चाहता था। मेरे मनकी अवस्था देखकर मन्मथ मुझसे बोले कि देखो, नगरसे कुछ दूरपर एक पिशाच सिद्ध मनुष्य है, वह जीवके भूत भविष्यत् शुभाशुभ सब संवाद बतला सकता है। मन्मथकी

प्रार्थनाले और अपने मानसिक उद्वेगको दूर करनेके निमित्त उसके पास जानेको राज़ी हुआ। मन्मथ बाबू, मैं आला-सिंगा व और एकमन कुछ दूर रेलसे गए फिर पैदल चलकर वहां पहुंचे । पहुंचकर देखा क्या कि, मसानके पास विकट आकारका मनकला सूखा, बहुत कालारङ्गका एक मनुष्य बैठा है। उसके अनुचरगणने 'किड़ीं मिडीं" कर अंग्राजी भाषामें समझा दिया कि यही पिशाचसिद्ध पुरुष हैं। प्रथम तो उसने हम लोगों पर कोई ध्यान नहीं दिया । फिर हम जब लौटनेको हुए तब हम लोगोंसे ठहरनेके लिये विनय की। हमारे साथी आलासिंगाने ही दोभाषीयका कार्य्य किया । उसने ही हम लोगोंको ठह-रनेको कहा । फिर एक पेंसल लेकर वह पिशाचसिद्ध मनुष्य कुछ समय तक जाने क्या लिखने लगा । फिर देखा कि वह मनको एकाग्र करके बिल्कुल स्थिर होगया उसके पश्चात् मेरा नाम, गोत्र इत्यादि चौदहपीढ़ीकी सब बातें बतलाईं और कहा कि ठाकुरजी मेरे साथ सर्वदा फिर रहे हैं। माताजीका मंगल समाचारभी बत-लाया। और यहभी कहा कि धर्मप्रचारके लिये मुझे शीघ्र ही बहुत दूर जाना पड़ेगा । इस प्रकारसे माताजीका

मंगल संवाद मिलने पर मन्मथके साथ शहरको लौटा। वहां पहुंच कर कलकत्तेसे तारके जवाबमें माताजीका मंगलसंवाद पाया।

स्वामी योगानन्दको लक्ष्य करके स्वामीजी बोले, "परन्तु उस पुरुषने जो कुछ बतलायाथा वह सब पूरा हुआ। यह "काकतालीयके" समान हीहो वा और किसी प्रकारसे ही गया हो।"

इसके उत्तरमें स्वामी योगानन्द बोले, "तुम पहिले इन सब पर विश्वास नहीं करते थे इसीलिये तम्हें यह सब दिखलानेका प्रयोजन हुआ था।"

स्वामीजी। मैं क्या बिना देखेभाले किसीपर विश्वास करता? मैंतो ऐसा मनुष्यही नहीं हूं। महामायाके राज्य-में आकर जगत्‌रूपी जादूके साथ साथ और कितनेही जादू देखनेमें आये। माया! माया!! अब राम कहो राम कहो! आज कैसी अलाय बलाय की बातें हुईं। भूत प्रेत की चिन्ता करनेसे लोग भूत प्रेतही बन जाते हैं, और जो रात दिन जानकर वा न जानकरभी कहते हैं, "मैं नित्य शुद्ध बुद्धमुक्तात्मा हूं" वेही ब्रह्मज्ञ होते हैं।

यह कह कर स्वामीजी प्रेमसे शिष्यको लक्ष्य करके

बोले, "इन सब अलाप बलापके बातोंको मनमें तिलमात्रभी स्थान न दो। सर्वदा सत् और असत्का विचार करो; आत्माको प्रत्यक्ष करनेके निमित्त प्राणपणसे यत्न करो। आत्मज्ञानसे श्रेष्ठ और कुछभी नहीं है। और जोकुछ है सबही माया है—जादु है। एक प्रत्यगात्माही अवितथ सत्य है। इस बातकी यथार्थता ठीक ठीक समझ गया हूं, इसी लिये तुम सबको समझानेकी चेष्टा भी करता हूं। 'एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन'।"

बात करते करते रातके १२ बजगए। अनन्तर स्वामीजी भोजनकर विश्राम करनेको चले। शिष्यभी स्वामीजीके चरणकमलोंको दण्डवत् कर विदा हुआ। स्वामीजीने पूछा, "क्या कल फिर आयेगा तो?"

शिष्य। जी महाराज, अवश्य आऊंगा। दिनान्तमें आपके दर्शन न होनेसे चित्त व्याकुल होजाता है।

स्वामीजी। अच्छा तो जाओ। रात अधिक होगई।

अनन्तर शिष्य स्वामीजीकी बातोंपर विचार करते हुए रातके १२ बजे घरको लौट आया।

त्रयोदश वल्ली ।

स्थान—बेलूड़-भाड़ेका मठ ।

वर्ष—१८९८ खृष्टाब्द ।

विषय—मठमें श्रीरामकृष्णदेवकी जन्मतिथिपूजा-ब्राह्मणजातिके अतिरिक्त अन्यान्य जातिके भक्तोंको स्वामीजीका यज्ञोपवीत धारण कराना-मठपर श्रीयुक्त गिरीशचन्द्रघोषजीका समादर-कर्म्म-योग वा परार्थमें कर्म्मानुष्ठान करनेसे आत्मदर्शन निश्चय है; इस सिद्धान्तको युक्ति विचार द्वारा स्वामीजीका समझाना ।

जिस वर्ष स्वामीजी इंग्लैण्डसे लौटे थे उस वर्ष दक्षिणेश्वरमें रानी रासमणिजीकी कालीबाड़ीमें श्रीरामकृष्णजीका जन्मोत्सव हुआ था । परन्तु नाना कारणसे अगले वर्ष यह उत्सव वहां नहीं होने पाया और मठकोभी आलमबाजारसे बेलूड़में गंगाजीके तटस्थ श्रीयुत् नीलाम्बर मुखोपाध्यायकी वाटिकाको भाड़ाकर, वहां उठाया गया । इसके कुछही दिन पश्चात् वर्त्तमान मठके निमित्त भूमि क्रय की गई थी किन्तु इस वर्ष यहां जन्मोत्सव नहीं होसका क्योंकि यह स्थान समतल नहीं था और जंगलसे

भी मरा था। इसलिये इस वर्षका जन्मोत्सव बेलूड़में दाँ बाबुओंकी ठाकुरबाड़ीमें हुआ। परन्तु श्रीरामकृष्णजीकी जन्मतिथिपूजा जो फाल्गुण की शुक्लद्वितीया तिथिमें होती है, वह नीलाम्बर बाबूकी वाटिकामेंही हुई और इसके दो एक दिन पश्चात्‌ही श्रीगुरुमहाराजकी प्रतिकृति इत्यादि क्रयकर शुभमुहूर्त्तमें नई भूमिपर पूजा हवन प्रभृतिका श्रीगुरुमहाराजकी प्रतिष्ठा की गई। इस समय स्वामीजी नीलाम्बरबाबूकी वाटिकामें ठहरे हुएथे। जन्म-तिथिपूजाके निमित्त विपुल आयोजन था। स्वामीजीके आदेशानुसार पूजागृह बड़ी उत्तमद्रव्य सामग्रीसे परिपूर्ण था। स्वामीजी उसदिन स्वयंही सब विषयोंकी देखभाल कर रहेथे।

जन्मतिथिके सुप्रभातमें सब कोई आनन्दित हो रहे थे। भक्तोंके मुंहमें श्रीठाकुरजीके प्रसंगके अतिरिक्त और कोई भी प्रसंग नहीं था। अब स्वामीजी पूजाघरके सन्मुख खड़े होकर पूजाका आयोजन दर्शन करने लगे।

इन सबकी देखभाल करनेके पीछे स्वामीजीने शिष्य से पूछा, "जनेऊ तो ले आये हो?"

शिष्य। जी हां, आपके आदेशानुसार सब प्रस्तुत

है। परन्तु इनने जनेऊ मंगवानेका कारण मेरी समझमें नहीं आया।

स्वामीजी। प्रत्येक द्विजातिकाही उपनयनसंस्कारमें अधिकार है। स्वयं वेद इसका प्रमाण है। आज श्रीठाकुरजीकी जन्मतिथिमें जोलोग यहां आयेंगे मैं उन सबको जनेऊ पहिराऊंगा। वे सब व्रात्य (संस्कारसे पतित) होगये हैं। शास्त्र कहता है कि प्रायश्चित्त करनेसे व्रात्योंका फिर उपनयन संस्कारमें अधिकार होताहै। आज गुरुजीका शुभ जन्मतिथिपूजन है-उनके नामसे वे सब शुद्ध पवित्र होजायेंगे। इसलिये आज उपस्थित उन भक्तगणोंको जनेऊ पहिराना है।समझेना?

शिष्य। मैंने आपके आदेशसे अनेक जनेऊ संग्रह किये हैं। पूजाके अन्तमें समागत भक्तोंको आपकी आज्ञानुसार पहिरा दूंगा।

स्वामीजी। ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्यान्य भक्तोंको इस प्रकार गायत्री मन्त्र बतला देना (यहां स्वामीजीने शिष्यसे क्षत्री आदि द्विजातियोंके गायत्रिमन्त्र कह दिये) क्रमशः—देशके सब लोगोंको ब्राह्मण पदवीपर आरूढ़ कराना होगा; श्रीगुरुजीके भक्तोंका तो कहनाही क्या है?

हिन्दुमात्रही एक दूसरेके भाई हैं। "इसे नहीं छूते, उसे नहीं छूते" कहकर हमनेही तो इनको ऐसा हीन बना दिया है। इसी लिये तो हमारा देश हीनता, भीरुता, मूर्खता व कापुरुषताकी चरम अवस्थाको प्राप्त हुआ है। इनको उठाना होगा, अभयवाणी सुनाना होगा। बतलाना होगा कि तुमभी हमारे समान मनुष्य हो, तुम्हाराभी हमारे ही समान सब अधिकार है। समझेना ?

शिष्य। जी महाराज।

स्वामीजी। अब जो लोग जनेऊ पहिरेंगे उनसे कह दो कि वे गंगाजीसे स्नानकर आवें। फिर ठाकुरजीको प्रणामकर वे जनेऊ पहिरेंगे।

स्वामीजीके आदेशानुसार समागत भक्तोंमेंसे कोई चालीस पचास जनोंने गंगास्नानकर शिष्यसे गायत्रीमन्त्र सीखकर जनेऊ पहिर लिया। मठमें बड़ी रौलचौल मच गई। भक्तगणोंने जनेऊ धारणकर ठाकुरजीको पुनः प्रणाम किया और स्वामीजीके चरणकमलोंमें भी बन्दनाकी। स्वामीजीका मुखारविन्द उनको देखकर मानो शतगुणा अधिक प्रफुल्लित होगया। इससे कुछही देर पीछे श्रीयुत् गिरीशचन्द्रघोषजी मठपर आपहुंचे।

अब स्वामीजीकी आज्ञासे संगीतके लिये उद्योग होने लगा और मठके संन्यासीलोग स्वामीजीको अपनी इच्छानुसार सजाने लगे। उनके कानोंमें शंखका कुण्डल सर्वाङ्गमें कपूरसमान श्वेत पवित्र विभूति, मस्तकमें आ-पादलम्बित जटाभार, वाम हस्तमें त्रिशूल, दोनों बांहोंमें रुद्राक्षकी माला और गलेमें आजानुलम्बित तीन लड़की बड़े रुद्राक्षकी माला आदि पहिराई। इन सबके धारण स्वामीजीका रूप ऐसा शोभासम्पन्न होगया कि उसका वर्णन करना साध्यातीत था। उसदिन जिन्होंने उनकी इस मूर्त्तिका दर्शन कियाथा उन सबने एक स्वरसे कहाथा कि साक्षात् बालभैरव स्वामी-शरीरमें पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। स्वामीजीनेभी और सब संन्यासियोंके अँगमें विभूति लगादी। उन्होंने स्वामीजीके चारोंओर सदेह भैरवगणके समान अवस्थान कर, मठभूमिपर कैलासपर्वतकी शोभाका विस्तार किया। अभीतक उस दृश्यका स्मरण आनेसे आनन्द होता है।

अब स्वामीजी पश्चिमी दिशाका मुंह फेरे हुये मुक्त-पद्मासनमें बैठकर "कुजन्तं रामरामेति" स्तोत्र धीरे धीरे उच्चारण करने लगे और अन्तमें "रामराम, श्रीराम राम"

पुनः पुनः कहने लगे। ऐसा अनुमान होताथा कि मानो प्रत्येक अक्षरसे अमृतधारा वह रही है। स्वामीजीके नेत्र अर्द्धनिमिलित थे और वे हाथसे तानपूरेमें स्वर दे रहे थे कुछदेरतक मठमें "राम राम, श्रीराम राम" ध्वनिके अतिरिक्त और कुछभी सुननेमें नहीं आया। इसप्रकारसे लगभग आधघन्टेसे भी अधिक समय व्यतीत होगया, तबभी किसीके मुंहसे अन्य कोईभी शब्द नहीं निकला। स्वामीजीके कन्ठनिःसृत रामनाम सुधाको पानकर आज सब मतवारे होगए हैं। शिष्य विचार करने लगा क्या सत्यही स्वामीजी शिवजीके भावसे मातवारे होकर रामनाम लेरहे हैं ? स्वामीजीके मुखका स्वाभाविक गाम्भीर्य्य मानो आज सौगुना होगया है। अर्द्धनिमिलित नयनप्रान्तसे मानो बालसूर्य्यकी प्रभा निकलरही है और मानो गहरे नशेकी घुमेरमें उनका विपुल शरीर झूम रहा है। इस रूपकी वर्णन करना या किसीको समझाना सम्भव नहीं है। इसका केवल अनुभव ही किया जासकता है। दर्शकगण "चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे"।

रामनाम कीर्त्तनके अन्तमें स्वामीजी उसीप्रकार मतवारी अवस्थामेंही गाने लगे-"सीतापति रामचन्द्र

"रघुपति रघुराई"। संगत करनेवाला अच्छा न होनेके कारण स्वामीजीका कुछ रसभंग होनेलगा। अनन्तर स्वामी सारदानन्दजीको गानेके आदेशकर स्वामीजी स्वयंही पखावज बजाने लगे। स्वामी सारदानन्दजीने पहिले-" एक रुप अरूप नाम वरण " गानको गाया। पखावजके स्निग्धगंभीर निर्घोषसे गंगाजी मानो उथलने लगीं और स्वामी सारदानन्दजीके सुकन्ठ और साथही मधुर आलापसे गृह छागया। तत्पश्चात् श्रीरामकृष्णजी स्वयं जिन गीतोंको गातेथे क्रमशः वे गीत भी होने लगे।

अब स्वामीजी यकायक अपने वेश भूषाको उतार कर बड़े आदरसे गिरीश बाबूको उससे सजाने लगे। गिरीश बाबूके विशाल शरीरमें अपने हाथसे भस्म लगा कर, कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर जटाभार, कन्ठ और बाहोंमें रुद्राक्षकी माला पहिराने लगे। गिरीश बाबू इस वेशोंमें मानों एक नवीन मूर्त्तिसे प्रकाशमान हुए। भक्त-गण इसको देखकर अवाक् होगये। अनन्तर स्वामीजी बोले, " परमहंसजी कहा करते थे कि गिरीश भैरवका अवतार है और हमसे उससे कोई प्रभेद नहीं है।" गिरीश बाबू चुप बैठे रहे। उनके संन्यासी गुरु भाई

जैसे चाहें वैसेही उनको सजावें यह इनका स्वीकार है। अन्तमें स्वामीजीके आदेशानुसार एक गेरुवा वस्त्र मंगवाकर गिरीश बाबूको पहिराया गया। गिरीश बाबूने कुछभी मना नहीं किया। गुरुभाइयोंकी इच्छानुसार अपने अंगको उन्हींके ऊपर छोड़दिया। अब स्वामीजीने कहा, "जी, सी, तुमको आज श्रीठाकुरजीकी कथा सुनानी होगी; (औरोंको लक्ष्य करके) कहा, "तुमलोग सब स्थिर होकर बैठो। अभी तक गिरीश बाबूके मुंहसे कोई शब्द नहीं निकला। जिनके जन्मोत्सवमें आज सब एकत्रित हुए हैं, उनकी लीला और उनके सांगोपांगोंको दर्शनकर वे आनन्दसे जड़वत् होगये हैं। अन्तमें गिरीश बाबू बोले, "दयामय श्रीठाकुरजीकी कथा मैं और क्या कहूं? उन्होंने मुझे तुम्हारे समान कामकांचनत्यागी संन्यासियोंके साथ एकही आसन पर बैठनेका जो अधिकार दिया है इससे ही उनकी अपार करुणाका अनुभव कर रहा हूं।" इन बातोंको कहतेही कहते उनके कन्ठरोध होगया और कुछभी उस दिन वह न कह सके।

अनन्तर स्वामीजीने कई एक हिन्दी गीत गाये,

"बैयाँ न पकरो मोरी नरम कलेयाँ", "प्रभु मेरे अव-गुन चित न धरो" इत्यादि। शिष्य संगीत विद्यामें ऐसा पूर्ण पण्डित था कि गीतका एक वर्ण भी उसको समझमें नहीं आया। केवल स्वामीजी के मुंहकी ओर टकटकी लगाकर देखताही रहा। अब प्रथम पूजा सम्पन्न होनेपर जलपानके निमित्त भक्त गण बुलाये गये। जलपानके पश्चात् स्वामीजी नीचेकी बैठकमें जा बैठे। समागत भक्तभी उनको वहाँ घेरकर बैठ गये। उपवीतधारी किसी गृहस्थीको सम्बोधन कर स्वामीजी बोले, "तुम यथार्थ में द्विजाति हो, बहुत दिनोंसे व्रात्य होगये थे। आजसे फिर द्विजाति बने। अब प्रतिदिन कमसे कम सौबार गायत्री मन्त्रको जपना। समझेना?" गृहस्थीने, "जैसी आज्ञा महाराजकी" कहकर स्वामीजीकी आज्ञा शिरोधार्य करली। इस अव-सरमें श्रीयुत् महेन्द्रनाथ गुप्त * आपहुंचे। स्वामीजी

---

* इन्होंने ही "श्रीरामकृष्णकथामृत" लिखी है। किसी कालिजीके अध्यापक होनेके कारण सब कोई इनको मास्टरजी कह-कर पुकारते हैं।

मास्टरजीको देख बड़े आदरसे सत्कार करने लगे। महेन्द्र बाबूभी उनको प्रणाम कर एक कोनेमें जाकर खड़े रहे। स्वामीजीके बार बार कहने पर संकोचसे वहाँ ही बैठगये।

स्वामीजी। मास्टरजी, आज श्रीठाकुरजीकी जन्मतिथि उत्सव है, आपको उनकी कथा कुछ हम लोगोंको सुनानी होगी।

मास्टरजी मृदुहास्यकर शिर झुकाये ही रहे। इस बीचमें स्वामी अखण्डानन्दजी† मुर्शिदाबादसे लगभग १॥ मन दो पन्तुया बनवाकर साथ लेकर मठमें आपहुंचे। दो अद्भुत पन्तुयाओंके देखनेको सब दौड़े। अनन्तर स्वामीजी प्रभृतिको दिखलाने पर स्वामीजीने कहा, "जाओ ठाकुरजीके मन्दिरमें रख आओ।"

स्वामी अखण्डानन्दको लक्ष्यकरके स्वामीजी शिष्यसे

---

†इन्होंने मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत सारगाछीमें अनाथाश्रम शिल्पविद्यालय व दातव्य चिकित्सालय स्थापन किये हैं। यहां बिना जात पातके विचारमे सबकी सेवा की जाती है और इनका कुल व्यय उदार सज्जनोंकी सहायता पर निर्भर है।

कहने लगे, " देखो कैसा कर्म्मवीर है। भय, मृत्यु, इन सबका कुछ ज्ञान नहीं। ' बहुजनहिताय बहुजनसुखाय ' अपना कार्य धीरजके साथ और एक चित्तसे कर रहा है। "

शिष्य। अधिक तपस्याके फलसे ऐसी शक्ति उनमें आई होगी।

स्वामीजी। तपस्यासे शक्ति उत्पन्न होती है यह सत्य है। किन्तु परार्थके निमित्त कर्म करना ही तपस्या है। कर्म्म-योगी लोग कर्म्मको तपस्याका एक अंग कहते हैं। जैसे तपस्यासे परहितकी इच्छा बलवती होकर साधकोंसे कर्म्म कराती है, वैसेही परार्थके निमित्त कार्य करते करते परातपस्याका फल चित्तशुद्धि वा परमात्मा का दर्शन प्राप्त होता है।

शिष्य। परन्तु महाशय, परार्थके निमित्त पहिलेसे ही प्राणपणसे कार्य्य कितने मनुष्य कर सकते हैं? जिस उदारतासे मनुष्य आत्मसुख इच्छाको बलि देकर औरोंके निमित्त जीवनदान करता है वह उदारता मनमें प्रथम-सेही कैसे आयेगी?

स्वामीजी। और तपस्या करनेमेंही कितने मनुष्योंका

प्रयोजन नहीं।

मन लगता है? कामकांचनके आकर्षणके कारण कितने मनुष्य भगवान् लाभ करनेकी इच्छा करते हैं? तपस्या जैसी कठिन है निष्काम कर्मभी वैसाही कठिन है। अतएव औरोंके मंगलके लिये जो लोग कार्य करते हैं उनके विरुद्ध तुझे कुछ कहनेका अधिकार नहीं है। यदि तुझे तपस्या अच्छी लगे तो करे जा। परन्तु यदि किसीको कर्मही अच्छा लगे तो उसे रोकनेका तुझे क्या अधिकार है? तू ने क्या यही अनुमान किये बैठा है कि कर्म तपस्या नहीं है?

शिष्य। जी महाराज। पहिले मैं तपस्याका अर्थ और कुछ समझता था।

स्वामीजी। जैसा साधन भजनका अभ्यास करते करते उस पर दृढ़ता हो जाती है वैसे ही पहिले अनिच्छा के साथ कार्य करते करते क्रमशः हृदय उसीमें मग्न हो जाता है और परार्थमें कार्य करनेकी प्रवृत्ति होती है। समझेना? तुम एक बार अनिच्छाके साथभी औरोंकी सेवा कर देखो, तपस्याके फलको प्राप्त होते हो या नहीं। परार्थमें कर्म करनेके फलसे मनका टेढ़ापन सीधा होजाता है और वह मनुष्य निष्कपटतासे औरोंके

मंगलके लिये प्राण देनेको उन्मूख होता है।

शिष्य। परन्तु महाशय, परहितका प्रयोजन क्या है?

स्वामीजी। अपने हितके निमित्त। तुमने इस शरीर पर ही अपना अहंका अभिमान रख छोड़ा है; यदि तुम यह सोचो कि परार्थमें इस शरीर को उत्सर्ग कर दिया तो तुम इस अहंभावको भी भूल जाओगे और अन्तमें विदेह बुद्धि आपहुंचेगी। एकाग्रचित्तसे औरोंके लिये जितना सोचोगें उतनाही अपने अहंभावको भूलोगे। इस प्रकार कर्म करने पर जब क्रमशः चित्तशुद्धि हो जायगी; तब अपनी ही आत्मा सर्वजीवमें, सर्वघटमें विराजमान है इस तत्त्वकी अनुभूति होगी। औरोंका हित साधन करना अपने आत्मविकाश का एक उपाय है—एक पथ है। इसे भी एक प्रकारकी ईश्वरसाधना जानना। इसकाभी उद्देश्य आत्मविकाश है। ज्ञान, भक्ति प्रभृतिकी साधनासे जैसा आत्मविकाश होता है, परार्थमें कर्म करनेसेभी वैसे ही होता है।

शिष्य। किन्तु महाशय, यदि मैं रात दिन औरोंकी चिन्तामें लगा रहा तो आत्मचिन्ता कब करूंगा? किसी एक भावको पकड़े रहनेसे अभावरूपी आत्माका साक्षात्

कार कैसे होगा ?

स्वामीजी। आत्मज्ञानका लाभ करना ही सकल साधनका, सकल पथका मुख्य उद्देश्य है। यदि तुम सेवापर बनो तो उसके कर्मफलसे चित्तशुद्धि तुम्हें प्राप्त होगी यदि सर्वजीवोंको आत्मवत् देखो तो आत्मदर्शनमें रह क्या गया? आत्मदर्शनका अर्थ क्या जड़के समान एक दीवाल वा लकड़ीके समान पड़ा रहना है?

शिष्य। माना ऐसा नहीं है, परन्तु शास्त्रमें सर्ववृत्ति और सर्वकर्मके निरोधको ही तो आत्माका स्व-स्वरुप अवस्थान कहा है।

स्वामीजी। शास्त्रमें जिस अवस्थाको समाधि कहा गया है वह अवस्था तो बड़ी सहजमें हर किसीको प्राप्त नहीं होती। तब बताओ, वह किस प्रकार समय बितायेगा? इस लिये शास्त्रोक्त अवस्था लाभ करनेके पीछे, साधक प्रत्येक भूतमें आत्मदर्शनकर अभिन्नज्ञानसे सेवापर बनकर अपने प्रारब्धको नष्ट करते हैं। इस अवस्थाको शास्त्रकार जीवनमुक्त अवस्था कह गये हैं।

शिष्य। महाशय, इससेतो यही सिद्ध होता है कि जीवनमुक्ति अवस्थाको प्राप्त न करनेसे कोईभी परार्थमें

ठीक ठीक कार्य नहीं कर सकता ।

स्वामीजी । शास्त्रमें यह बात है । फिर यहभी है कि परार्थमें सेवापर होते होते साधककोजीवनमुक्ति अवस्था प्राप्त होती है । नहीं तो शास्त्रमें " कर्मयोग " के नामसे एक भिन्न पथके उपदेश करनेका कुछ प्रयोजन नहीं था ।

शिष्य यहसब बातें समझकर अब चुप होगया: स्वामीजीने भी इस प्रसंगको छोड़कर अपने किन्नर कन्ठसे गीत गाना आरम्भ किया—

साहाना – झपताल

नरतन धर तुम कौन हो आये—
झोंपड़ी में आप आन, हुये हो प्रकाशमान,
देख हम अनूप रूप, मन सुमन खिलाये ।
तव मुखकमल के भ्रमर बने हैं,
हटते नहीं हैं ये नयन हटाये ।
एक दुखिया ब्राह्मणी की गोद में,
सो हो दिगम्बर अति हर्षाये ।
इच्छा है हम तुम्हें रखले हृदय में,
हृदयतापहारी रूप हो तुम बनाये ।

जगत् को तापित लख कातर हो,
व्यथित जनों को दर्श दिखाये।
करुणा राजे है तव मुख पर,
रोते हो कभी और कभी हो मुसकाये। *

गिरीश बाबू और अन्यान्य भक्तगण भी उनके साथ उसी गीतको गाने लगे। "जगत् को तापित लख कातर हो" इत्यादि पदको बारबार गानेलगे। अतः पर "भज-लो आमार मनभ्रमरा, कालीपद नीलकमले", "अगणन भुवनभार धारी" इत्यादि कईएक गीत गानेके पश्चात् तिथिपूजनके नियमानुसार एक जीतीहुई मछलीको बड़े बाजबाजाकर गंगाजीमें छोड़ दिया गया। तत्पश्चात् प्रसाद पानेके लिये भक्तोंमें बड़ी धूम मच गई।

---

* श्रीरामकृष्णजन्मोत्सवके लिये महाकवि श्रीयुत गिरीश-चन्द्र घोषजीके रचे हुये गीतकी मेरठ निवासी साधु विश्वम्भरसहाय व्याकुल कृत हिन्दी छाया।

चतुर्दश वल्ली।

स्थान—बेलूड़, भाड़ेका मठ।

वर्ष—१८९७ खृष्टाब्द।

विषय—नई मठ की भूमि पर ठाकुरजी की प्रतिष्ठा—आचार्य्य शंकरकी अनुदारता—बौद्धधर्मका पतन—कारण निर्देश—तीर्थमाहात्म्य—'रथे तु वामनं दृष्ट्वा' इत्यादि श्लोकका अर्थ—भावाभावके अतीत ईश्वर-स्वरूपकी उपासना।

आज स्वामीजी नई मठकी भूमि पर यज्ञ करके ठाकुरजीकी प्रतिष्ठा करेंगे। ठाकुर प्रतिष्ठा दर्शन करनेकी वासनासे शिष्य पूर्व रात्रिसे ही मठमें उपस्थित है।

प्रातःकाल गंगास्नान कर स्वामीजीने पूजाघरमें प्रवेश किया। अनन्तर पूजनके आसन पर बैठ पुष्पपात्रमें जो कुछ फूल व बिल्वपत्र था, दोनों हाथमें सब एक साथ उठा लिया और श्रीरामकृष्णजीकी पादुकाओं पर अञ्जलि देकर ध्यानस्थ हो गये—क्या ही अपूर्व दर्शन ! उनकी धर्मप्रभा विभासित स्निग्धोज्ज्वल कान्तिसे पूजा-

गृह मानो कैसी एक अद्भुत् ज्योतिसे पूर्ण हो गया ! स्वामी प्रेमानन्द व अन्यान्य स्वामी पादगण पूजागृहके द्वार पर ही खड़े रहे।

ध्यान तथा पूजाके अन्तमें मठभूमिको जानेका अब आयोजन होने लगा। तांबेके जिस डिब्बेमें श्रीरामकृष्ण-देवकी भस्मास्थि रक्षित थी, स्वामीजी स्वयं उसको अपने कन्धे पर रखकर आगे चलने लगे। शिष्य अन्यान्य संन्यासियोंके साथ पीछे पीछे चला । शङ्ख घण्टोंकी ध्वनिसे तटभूमि मुखरित हो गई । भागीरथी गंगाजी अपने लहरोंसे मानों हावभावके साथ नृत्य करने लगीं। मार्गसे जाते समय स्वामीजी शिष्यसे बोले, "ठाकुरजीने मुझसे कहा था कि 'तू मुझको कन्धे पर चढ़ा कर जहां ले जायगा मैं वहीं जाऊंगा और रहूंगा चाहे वह स्थान वृक्षके तले हो या कुटीर हो । ' इस लिये मैं स्वयं उनको कन्धे पर उठाकर नई मठभूमि पर लेजा रहा हूं। यह निश्चय जान लेना कि श्रीगुरुमहाराज 'बहुजनहिताय' यहां स्थिर रहेंगे।

शिष्य। ठाकुरजीने आपसे यह बात कब कही थी?

स्वामीजी। (मठके साधुओंको देखाकर) क्या इनसे

कभी इस बातको नहीं सुनी ? काशीपुरके बागमें उन्होंने यह कहा था।

शिष्य। जी हां, हां। उसी समय न सेवाधिकार लिये ठाकुरजीके गृहस्थी व संन्यासी भक्तोंमें कुछ फूट पड़ गई थी।

स्वामीजी। हां, ठीक फूट तो नहीं, मनमें कुछ मलसा आगया था। स्मरण रखना कि जो ठाकुरजीके भक्त हैं, जिन्होंने ठाकुरजीकी कृपा यथार्थ लाभ की है (वे गृहस्थ हों या संन्यासी) उनमें कोई मनोमालिन्य नहीं है और न रही सकता है। तो फिर ऐसे अल्याधिक मनोमालिन्य होनेका कारण क्या है सुनेगा ? प्रत्येक भक्त अपने अपने रङ्गसे ठाकुरजीको-रङ्गता है और इसी लिये प्रत्येकजन भिन्न भिन्न भावसे उनको देखता है व समझता है। मानो वे एक महासूर्य हैं और हम लोग नाना रङ्गके कांच अपनी आंखोंके सामने रखकर उस एक सूर्यकोही नाना रङ्ग विशिष्ट अनुमान करते हैं। यह भी निश्चित है कि इसी प्रकारसे ही भविष्यत्में भिन्न भिन्न मतोंका सृजन होता है। परन्तु जो सौभाग्यसे अवतार पुरुषोंका साक्षात् सत्संग करते हैं, उनकी जीवन अवस्थामें ऐसे दलोंका

प्रायः सृजन नहीं होता । आत्माराम पुरुषकी ज्योतिसे वे चकाचौन्द हो जाते हैं; अहंकार, अभिमान, हीनबुद्धि सब मिट जाते हैं । अतएव दल बनानेका कोई अवसर उनको नहीं मिलता । वे अपने अपने भावानुसार उनकी हृदयसे पूजा करते हैं ।

शिष्य । महाशय, तब क्या ठाकुरजीके सब भक्त उनको भगवान जानकरभी उसी एक भगवानके स्वरूपको भिन्न भिन्न भावसे देखते हैं और इसी कारण क्या उनके शिष्य व प्रशिष्य छोटी छोटी सीमामें बद्ध होकर छोटे छोटे दल वा सम्प्रदायोंका सृजन कर बैठते हैं ?

स्वामीजी । हां, इसी कारणसे कुछ समयमें सम्प्रदायें बन ही जायेंगी । देखोना, चैतन्यदेवकी वर्त्तमानमें दो तीन सौ सम्प्रदायें हैं, यीशुके सहस्रों मत निकले हैं; परन्तु वे सब सम्प्रदाय ही चैतन्य देव और यीशुको मानते हैं ।

शिष्य । तो ऐसा अनुमान होता है कि श्रीरामकृष्ण-जीके भक्तोंमें भी कुछ समयमें बहुत सम्प्रदाय निकल पड़ेंगे ।

स्वामीजी । अवश्य निकलेंगे । परन्तु जो मठ हम

यहां वनाते हैं वहां सब मत और सब भावोंका साम-ञ्जस्य रहेगा। श्रीगुरुमहाराजका जैसा उदार मत था उसी का यह केन्द्र होगा। महासमन्वयरूपी किरण जो यहांसे प्रकाश होगी, उससे जगत् प्लावित हो जायगा।

इसी प्रकारका वार्त्तालाप करते हुये वे सब मठभूमि ५र पहुंचे। स्वामीजीने कन्धे परसे डिब्बेको पृथ्वी पर बिछे हुए आसन पर उतारा और भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। और सबोंने भी प्रणाम किया।

अनन्तर स्वामीजी फिर पूजा पर बैठ गये। पूजाके अन्तमें यज्ञाग्नि प्रज्वलित करके हवन किया और संन्यासी गुरुभाइयोंकी सहायतासे स्वयं क्षीर पकाकर ठाकुरजीको भोग चढ़ाया। ऐसा स्मरण होता है कि उस दिन स्वा-मीजीने कई एक गृहस्थियोंको दीक्षादान भी दिया था। जो कुछभी हो, फिर पूजा सम्पन्न होने पर स्वामीजीने समागत् सबको आदरसे बुलाकर कहा, "आज आप लोग तन मन वाक्य द्वारा श्रीगुरुजीसे ऐसी प्रार्थना कीजिये जिसमें महायुगावतार श्रीठाकुरजी 'बहुजन-हिताय बहुजनसुखाय' इस पुण्यक्षेत्र पर अधिष्ठित रहें और इसको सर्वधर्मका अपूर्व समन्वय केन्द्र बना रक्खें।"

सबने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की । पूजा सम्पूर्ण होने पर स्वामीजीने शिष्यसे कहा, "गुरुमहाराजके इस सम्पुटक (डिब्बा) को लौटा लेजानेका अधिकार हम लोगों (संन्यासियों) मेंसे किसीको नहीं है । क्योंकि हमनेही यहां गुरुमहाराजका स्थापन किया है। अतएव तू इस सम्पुटकको अपने मस्तक पर धरकर मठ (नीलाम्बर बाबूकी वाटिका) को ले चल।" शिष्यको डिब्बेको स्पर्श करनेमें कुण्ठित देख स्वामीजी बोले, "डरो नहीं, उठा लो ; मेरी आज्ञा है ।" तब शिष्यने बड़े आनन्दसे स्वामीजीकी आज्ञाको शिरोधार्य कर डिब्बेको अपने मस्तक पर उठा लिया और अपने गुरुजीकी आज्ञासे इस डिब्बेको परस करनेका अधिकार पानेपर अपनेको कृतार्थ मानने लगा। आगे आगे शिष्य, उसके पीछे स्वामीजी और तत्पश्चात् अन्यान्य सब चलन लगे । मार्ग पर स्वामीजी उससे बोले. "श्रीगुरुमहाराज तेरे सिर पर सवार होकर तुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। आजसे सावधान रहना किसी अनित्य विषयमें अपना मन न लगाना ।" एक छोटासा पुलपार होते समय स्वामीजी फिर शिष्यसे बोले,"देखना, यहां खूब सावधानता, सतर्कतासे चलना।"

इस प्रकारसे सब कोई निर्वाधाके साथ मठमें पहुंचकर हर्ष मनाने लगे । स्वामीजी अब कथा प्रसंग शिष्यसे कहने लगे, " श्री गुरुमहाराजकी इच्छासे आज उनके धर्मक्षेत्रकी प्रतिष्ठा हुई । बारह वर्षकी चिन्ताका बोझ आज शिरसे उतरा । अब मेरे मनमें क्या क्या उदय हो रहा है सुनेगा ? यह मठ विद्या व साधनाका एक केन्द्रस्थान होगा । तुम्हारे समान सब धार्मिक गृहस्थ इस भूमिके चारों ओर अपना अपना घर वार बनाकर बसेंगे और बीचमें त्यागी संन्यासी लोग रहेंगे । मठको दक्षिण ओरकी भूमिपर इङ्गलैंड व अमेरिकाके भक्तोंके लिये गृह बनाये जायेंगे । यदि ऐसा बनजाय तो कैसा होगा ?

स्वामीजी । आपकी यह कल्पना बड़ी अद्भुत है ।

शिष्य । कल्पना क्या होती है ? समयमें यह सब अवश्य होगा । मैं तो इसकी नींव मात्र डालता हूं । पश्चात् और क्या क्या न होगा ? कुछ तो मैं करजाऊंगा और कुछ भावविचार (ideas) तुम लोगोको दे-जाऊंगा । भविष्यत्में तुम उन सबको कार्य्यमें परिणत करोगे । बड़ी बड़ी मीमांसा (principles) को सुने;

रखनेसे क्या फल है—प्रतिदिन उनको कार्यमें लगाना चाहिये। शास्त्रों की लम्बी लम्बी बातोंको केवल पढ़नेसे क्या है? प्रथम इनको समझना चाहिये। फिर अपने जीवनमें उनको फलित करना चाहिये। समझेना? इसीकोही practical religion अर्थात् कर्मजीवनमें परिणत धर्म्म कहते हैं।

इस प्रकार नाना प्रसंग से श्रीमत् शंकराचार्यका प्रसंग आरम्भ हुआ। शिष्य आचार्य शंकरका बड़ाही पक्षपाती था; यहां तक कि उसको उनपर दीवाना कहा जा सकता था। खर्व दर्शनोंमें शंकर प्रतिष्ठित अद्वैत मत को मुकुटमणि (श्रेष्ठ) समझताथा और यदि किसीने श्री शंकराचार्यमहाराजके उपदेशोंमें कुछ दोष निकाला तो उसके हृदयमें सर्पदंशनकी नाईं चुभता था। स्वामीजी यह जानते थे और उनको यह पसन्द नहीं था कि कोई किसी मतका दीवाना बन जाए। जबही किसीको किसी विषयका दीवाना देखते थे तबही स्वामीजी उस विषयके विरुद्धपक्ष को अवलम्बन कर सहस्रों अमोघ युक्तियोंसे उस दीवानापन रूपी बांधको चूर्ण करदेते थे।

स्वामीजी। शंकरकी बुद्धि तरवारके समान तीव्र थी

वे विचारक थे और पण्डित भी थे परन्तु उनमें उदार भावोंकी गम्भीरता अधिक नहीं थी और ऐसा अनुभव होता है कि उनको हृदय भो उसी प्रकार था । इसके अतिरिक्त उनमें ब्राह्मणत्वका अभिमान वहुत था । एक आदर्श दक्षिणी ब्राह्मण थे, और क्या ? अपने वेदान्त-भाष्यमें कैसा बहादुरीसे समर्थन किया है कि ब्राह्मणके अतिरिक्त और जातियोंको ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता ! उनके विचारकी क्या प्रशंसा करूं! विदुरजीको उल्लेख कर उन्होंने कहा है कि पूर्वजन्ममें ब्राह्मण शरीर रहनेके कारण वह (विदुर) ब्रह्मज्ञ हुये थे । अच्छा, यदि आज कल किसी शूद्रको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो तो क्या शंकरके मतानुसार कहना होगा कि वह पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था ? क्यों, ब्राह्मणत्वको लेकर ऐसी खँचा खँची करनेका क्या प्रयोजन है ? वेदने तो प्रत्येक त्रैवर्णिकको ही वेदपाठ और ब्रह्मज्ञान का अधिकारी वताया है । तो फिर इस विषय के निमित्त वेदके भाष्यमें ऐसी अद्भुत विद्या प्रकाश कर-नेका कोई भी प्रयोजन नहीं था । फिर उनके हृदयके भावका विचार करो । कितने बौद्धश्रमणोंको आगमें झोंककर मारडाला । इन बौद्धलोगोंकी भी कैसी बुद्धि

थी कि तर्कमें हटकर आगमें जलकर मरे। शंकराचार्यके यह कार्य संकीर्ण दीवानपनसे निकले हुए पागलपनके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? पक्षान्तरे बुद्धदेव-जीके हृदयका विचार करो। 'वहुजन हिताय वहुजन सुखाय' कहनाही क्या है, वे एक बकरीका बच्चाकी जीवनरक्षाके लिये अपना जीवनदान देनेको सदा प्रस्तुत रहते हैं। कैसी उदारभाव, कैसी दया—एक वार सोच कर तो देखो।

शिष्य। क्यों महाशय, क्या बुद्धदेवके इस भावको भी और एक प्रकारका पागलपना नहीं कह सकते हैं? एक पशुके निमित्त अपने प्राण देने को तैयार होगये।

स्वामीजी। परन्तु उनके इस दीवानेपनसे इस संसारके कितने जीवोंका कल्याण हुआ यह भी देखो। कितने आश्रम वने, कितने स्कूल कालिज बने, कितनी पशुशालाएं स्थापित हुईं, कितनी स्थापत्य विद्या का विकास हुआ, इन सबों को भी सोचो! बुद्धदेव के जन्म होनेके पूर्वमें इस देशमें क्या था? ताल पत्रे की पोथियोंमें कुछ धर्मतत्व था, सो भी विरलेही मनुष्य-मात्र उसको जानते थे। लोग कैसे इसको नित्यकार्यमें

लायेंगे इस बातको बुद्धदेवजीने ही दिखलाया । वे ही वास्तवमें वेदान्तकी स्फुरणमूर्त्ति थे ।

शिष्य । परन्तु, महाशय, यह भी है कि वर्णाश्रमधर्मको तोड़कर भारतमें हिन्दू धर्मके विप्लवकी सृष्टि वेही कर गये हैं और इसी लिये ही कुछ दिनोंमें उनका प्रचारित धर्म भारतसे निकाल दिया गया । यह बात भी सत्य प्रतीत होती है ।

स्वामीजी । बौद्ध धर्मकी ऐसी दुर्दशा उनकी शिक्षा के कारण नहीं हुई, पर उनके शिष्योंके दोषसेही हुई । दर्शनशास्त्रोंके बहुधा चर्चासे उनके हृदयकी उदारता कम होगई । तत्पश्चात् क्रमशः वामाचारियोंके व्यभिचारसे बौद्ध धर्म मर गया । ऐसी बीभत्स वामाचार प्रथाका उल्लेख वर्त्तमान समयके किसी तन्त्रमें भी नहीं है ! बौद्धधर्मका एक प्रधान केन्द्र 'जगन्नाथक्षेत्र' था । वहांके मन्दिर पर जो बीभत्स मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं उनको देखनेसेही इन बातोंको जान जाओगे । श्रीरामानुजाचार्य व महाप्रभू चैतन्यजीके समयसे यह पुरुषोत्तम क्षेत्र वैष्णवके अधिकारमें आया है । वर्त्तमानमें महा

पुरुषोंकी शक्तिसे इस स्थानने और एक नवीन मूर्ति धारण की है।

शिष्य। महाशय, शास्त्रों से तीर्थस्थानोंकी विशेष महिमा जान पड़ती है। यह कहाँ तक सत्य है?

स्वामीजी। सकल ब्रह्माण्ड जब नित्य आत्मा ईश्वर का विराट शरीर है, तब विशेष २ स्थानोंके माहात्म्यमें आश्चर्यकी क्या बात है? विशेष स्थानों पर उनका विशेष विकाश है। कहीं पर आपहीसे प्रकटित हैं और कहीं शुद्ध-सत्त्व मनुष्यके व्याकुल आग्रहसे प्रकट होते हैं। साधारण मनुष्य जिज्ञासु होकर वहां पहुंचने पर सहजमें फल प्राप्त करते हैं। इस निमित्त तीर्थादिको आश्रय करनेसे समयमें आत्माका विकाश होना सम्भव है।

पञ्चदश वल्ली।

स्थान—वेलूड़—भाड़ेका मठ।

वर्ष-१८९८ खृष्टाब्द (फ़र्वरी मास)।

विषय—स्वामीजीकी बाल्य व यौवन अवस्थाकी कुछ घटनायें व दर्शन—अमेरिका में प्रकाशित विभूतियोंका वर्णन—भीतरसे मानो कोई वक्तृता राशिको बढ़ाता है ऐसी अनुभूति—अमेरिकाके स्त्री पुरुषोंका गुणागुण—ईर्षाके मारे पादरियोंका अत्याचार—जगत्में कोई महत्कार्य कपटतासे नहीं बनता—ईश्वर पर निर्भरता—नागमहाशयके विषयमें कुछ कथन।

वेलूड़में, श्रीयुत नीलाम्बर बाबूके बागमें स्वामीजी मठको उठा लाये हैं। आलमबाज़ारसे यहां आने पर अभी तक सब वस्तुओंको ठीकसे लगाया नहीं गया है। चारों ओर सब बिखड़ी पड़ी है। स्वामीजी महाराज नये भवनमें आकर अति प्रसन्न होरहे हैं। शिष्यके वहां पहुंचने पर बोले, "अहाहा! देखो कैसी गंगाजी हैं। कैसा भवन है! ऐसे स्थान पर मठ न बननेसे क्या कभी चित्त प्रसन्न होता है?" तब अपराह्न का समय था।

सन्ध्याके पश्चात् दुमंज़िले पर स्वामीजीसे शिष्यका

साक्षात् होनेसे नाना प्रकारके प्रसंग होने लगे। उस गृहमें तव और कोई भी नहीं था। शिष्य बीच बीचमें स्वामीजीको चिलम भरके पिलाने लगा और नाना प्रश्न करने लगा । अन्तमें उनकी बाल्यावस्थाके विषयमें सुननेको अभिलाष की। स्वामीजी कहने लगे, " छोटी अवस्थासेही मैं बड़ा साहसी था। यदि ऐसा न होतातो निःसम्वल संसारमें फिरना क्या मेरे लिये कभी सम्भव होता ?

रामायणकी कथा सुननेकी इच्छा उन्हें बचपनसेही थी । पड़ोसमें जहांभी रामायण गान होता था वहीं स्वामीजी अपनी सब खेल कूद छोड़कर पहुंच जाते थे। उन्होंने कहा कि कथा सुनते सुनते बाजे दिन उसमें ऐसे लीन हो जाते थे कि अपने घरवार तक भूल जाते थे। 'रात चढ़ गई है' या 'घरको जाना है' इत्यादि विषयोंका स्मरण भी नहीं रहता था। किसी दिन कथा में सुना कि हनुमानजी कदली वनमें रहते हैं। सुनतेही ऐसा विश्वास मनमें हुआ कि कथा निवटने पर उस दिन रातमें घरको नहीं लौटे और घरके निकट किसी एक उद्यानमें केलेके वृक्षके नीचे बहुत रात हनुमानजीके दर्शन पानेकी इच्छा-से विताई।

पथप्रदर्श नहीं।

रामायणके नायक नायिकाओंमें से हनुमानजी पर स्वामीजीकी अगाध भक्ति थी। संन्यासी होने परभी कभी कभी महावीरजीके प्रसंगसे मतवारे हो जाते थे और अनेकवार मठमें महावीरजीकी एक प्रस्तरमूर्ति रखनेका संकल्प करते थे।

पाठ्यावस्थामें वे दिन भर अपने साथियों के साथ आमोदप्रमोद में ही रहते थे। रातको घरके द्वार बन्द कर अपना पठन पाठन करते थे। दूसरे किसी को यह नहीं जान पड़ता था कि वे कब अपना पठन पाठन करते हैं।

* * * * * *

शिष्यने पूंछा महाशय, स्कूलों में पढ़ते समय क्या कभी आपको किसी प्रकारका दिव्यदर्शन (vision) हुआ था?

स्वामीजी। स्कूल में पढ़ते समय एक दिन रातमें द्वार बन्दकर ध्यान करते करते मन भली भांति तन्मय होगया। कितनी देर ऐसे भावसे ध्यान किया था यह कह नहीं सकता। ध्यान अन्त हो गया तबभी बैठा हूं। इस अवसरमें देखता हूं कि दक्षिण दिवालको भेदकर

जाता रहा।

के एक ज्योतिर्मय मूर्त्ति निकल आई और मेरे सामने खड़ी होगई। उसके बदन पर एक अद्भुत ज्योति थी। मस्तक मुण्डित था और हाथों में दण्ड व कमण्डलु था मेरे ऊपर टकटकी लगा कर कुछ समय तक देखती रही मानो मुझसे कुछ कहेगी। मैं भी अवाक् होकर उनकी ओर देखने लगा। तत्पश्चात् मन कुछ ऐसा भयभीत होगया कि मैं शीघ्र द्वार खोल कर बाहर निकल आया। फिर मैं सोचने लगा क्यों मैं इस प्रकार मूर्ख के समान भाग आया, सम्भव था कि वह कुछ मुझसे कहती। परन्तु फिर कभी उस मूर्ति के दर्शन नहीं पाये। कितने ही दिन चिन्ता की यदि फिर उसके दर्शन मिले तो उससे डरूंगा नहीं वरन् वार्त्तालाप करूंगा। किन्तु फिर दर्शन हुए ही नहीं।

शिष्य। फिर इस विषय पर आपने कुछ चिन्ता भी की?

स्वामीजी। चिन्ता अवश्य की किन्तु ओर छोर नहीं मिला। अब ऐसा अनुमान होता है कि मैंने तब भगवान् बुद्धदेवजीको देखा था।

कुछ देर पीछे स्वामीजी बोले, "मनके शुद्ध होने

पर अर्थात् मनसे काम और कांचन की लालसा शान्त होजाने पर, कितनेही दिव्य-दर्शन होते हैं। वे दर्शन बड़े ही अद्भुत होते हैं। परन्तु उनपर ध्यान रखना उचित नहीं है। रात दिन उनपर मनकी स्थिति होनेसे साधक और आगे नहीं बढ़ सकते हैं। तुमने जो सुना है कि श्री गुरुमहाराज कहा करते थे, "मेरे चिन्तामणि की ड्योढ़ी पर कितने ही मणि पड़े हुए हैं।" आत्माका साक्षात् करना ही उचित है। उन सब पर ध्यान देनेसे क्या होगा?

इन कथाओंको कहते ही स्वामीजी तन्मय होकर किसी विषयकी चिन्ता करते हुए कुछ समय तक मौन-भावसे बैठे रहे। फिर कहने लगे. "देखो जब मैं अमेरीकामें था तब मुझमें अद्भुत शक्तियोंका स्फुरण हुआ था। क्षणमात्रमें मैं मनुष्योंकी आंखोंसे उनके मनके सब भावोंको जान सकता था। किसीके मनमें कैसीहो कोई बात क्यों नहो वे सब मेरे सामने "हस्तामलकवत्" प्रत्यक्ष होजाती थी। कभी किसी किसीसे कह भी दिया करता था। जिन जिनसे मैं ऐसा कहा करता था उनमेंसे अनेक मेरे चेले बन जाते थे। और यदि कोई किसी बुरे

अभिप्राय से मेरे साथ मिलने आताथा तो वे इस शक्तिका परिचय पाकर फिर कभी मेरे पास नहीं आते थे।"

"जब चिकागोप्रभृति शहरोंमें वक्तृता देना आरम्भ किया तब सप्ताहमें बारह तेरह, कभी इनसे भी अधिक वक्तृताएं देनी पड़ती थीं। शारीरिक व मानसिक परिश्रम बहुत अधिक होनेके कारण मैं बहुत क्लान्त हो जाता था, और अनुमान होता था कि मानो वक्तृताओंके सब विषय अन्त होने वाले ही हैं। अब मैं क्या करूं, कल फिर नई बातें कहांसे कहूंगा ऐसी चिन्ता मनमें आत थ ऐसा अनुमान होता था कि कोई नूतनभाव और नहीं उठेगा। एक दिन वक्तृताके अन्तमें लेटे हुए चिन्ता कर रहा था,—'बस, अबतो सब निबट लिया, अब क्या उपाय करूं।" ऐसी चिन्ता करते करते कुछ तन्द्रा सी आई। उसी अवस्थामें सुननेमें आया कि मानो कोई मेरे पास खड़े होकर वक्तृता दे रहे हैं उसमें कितनेही नवीनभाव, नवीन कथाओंके वर्णन हैं—मानो वे सब इस जन्ममें कभी मेरे सुननेमें या ध्यानमें नहीं आये। सोकर उठतेही उन बातोंका स्मरण रखता था और वक्तृताओंमें उन्हींका व्याख्यान करता था। ऐसा कितने

ही दिन हुआ है- उसकी संख्या क्या बतलाऊं ? सोते हुए ऐसी वक्तृतायें कितने ही दिन सुनीं ! कभी इतनी ज़ोरसे ये वक्तृताएं दी जाती थीं कि अन्यान्य गृहमें औरोंको भी शब्द सुनाई देता था दूसरे दिन वे मुझसे पूछते थे, " स्वामीजी कल रातमें आप किससे इतने ज़ोरसे वार्त्तालाप कर रहे थे ? उनके इस प्रश्नको किसी प्रकारसे टाल दिया करता था । वह बड़ीही अद्भुत घटना थी । "

शिष्य स्वामीजीकी बातोंको सुन निर्वाक् होकर चिन्ता करते हुये बोला, " महाशय ऐसा अनुमान होता है कि आपही सूक्ष्म शरीरमें वक्तृतायें किया करते थे, और स्थूल शरीरसे कभी कभी प्रतिध्वनि निकलती थी । "

यह सुनकर स्वामीजी बोले, " सम्भव है " ।

अनन्तर पुनः अमेरिकाकी बात छिड़ी । स्वामीजी बोले, " उस देशमें पुरुषोंसे स्त्रियां अधिक शिक्षिता होती हैं । विज्ञान व दर्शनमें बड़ी पण्डिता हैं, इसी लिये वे मेरा इतना मान करती थीं ! वहाँ पुरुष रात दिन परिश्रम करते हैं, तनिक भी विश्राम करनेका अवसर नहीं

पाते; स्त्रियां स्कूलोंमें पढ़कर और पढ़ाकर विदुषी बन गई हैं। अमेरिकामें जिधर भी दृष्टि डालो, स्त्रियोंका राजत्व दिखाई देता है।

शिष्य। महाशय, खृष्टानोंमेंसे जो संकोर्ण हृदयके (कट्टर) थे, वे क्या आपके विपक्ष नहीं हुए ?

स्वामीजो। हां हुए कैसे नहीं। फिर जब लोग मेरा बहुत मान करने लगे तब वे पादरी लोग बड़े मेरे पीछे पड़े। मेरे नामपर कितनेही निन्दा समाचार पत्रों में लिखने लगे। कितनेही लोग उनका प्रतिवाद करनेको मुझसे कहने लगे; परन्तु मैं उनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया करता था। मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि कपटता से जगत्‌में कोई महत् कार्य्य नहीं होता; इसी लिये उन अश्लील निन्दाओं पर कर्णपात न करके मैं धीरेसे अपना कार्य करे जाता था। अनेक समय यह भी देखने में आता था कि जिसने मेरी निन्दा की वही फिर अनुतप्त होकर मेरी शरण लेता था। कभी कभी ऐसा भी हुआ कि किसी घर पर मेरा निमन्त्रण है यह सुनकर वहां कोई आ पहुंचा और मेरे नामपर मिथ्यानिन्दा घर वालों से कर आया। और घरवाले भी यह सुन कर

कहीं चल दिये। मैं निमन्त्रण पालन करके वहाँ गया, देखा सब सुनसान, कोई भी नहीं है। फिर कुछ दिन पीछे वे ही सत्य समाचारको जानकर बड़े अनुतप्त होते हुए मेरे पास शिष्य होनेको आये। बच्चा, जानते तो हो कि इस संसारमें निरी दुनियादारी है। जो यथार्थ उत्साही व ज्ञानी है, वह क्या ऐसी दुनियादारीसे कभी घबड़ाता है? 'जगत् जो चाहे कहे, क्या परवाह है, मैं अपना कर्त्तव्य कार्य्य करता चला जाऊंगा'—यही वीरोंकी बातें हैं। यदि वह क्या कहता है, वह क्या लिखता है, ऐसी बातों पर रात दिन ध्यान रहे तो जगत्में कोई महत् कार्य नहीं हो सकता तुमने क्या इस श्लोकको नहीं सुना—

> "निन्दन्तु नीतिनिपुणायदि वा स्तुवन्तु।
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टं।
> अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा,
> न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥"

भर्तृहरि—नीतिशतकम्

लोग तुम्हारी स्तुति करें या निन्दा, लक्ष्मी तुम्हारे ऊपर कृपावती हो या न हो, तुम्हारा देहान्त आज हो

या युगभर पीछे, तुम न्याय्य पथसे कभी भ्रष्ट न हो। कितने ही झड़ तूफ़ान पार होने पर मनुष्य शान्तिके राज्यमें पहुंचता है। जो जितना बड़ा हुआ है, उसके लिये उतनी ही कठिन परीक्षा रक्खी गई है। परीक्षारूपी कसौटीमें उसके जीवनको घिसने पर जगत्‌ने उसको बड़ा कहकर स्वीकार किया है। जो भीरु, कापुरुष होते हैं, वे ही समुद्रकी लहरोंको देखकर किनारेपर ही नाव डुबोते हैं। जो महावीर होते हैं वे क्या किसी बात पर ध्यान देते हैं। 'जो कुछ होना है सो हो, मैं अपना इष्ट-लाभ अवश्य करके रहूंगा' यही यथार्थ पुरुषकार है। इस पुरुषकारके न होने पर सैकड़ों दैवशक्तियांभी तुम्हारे जड़त्वको दूर नहीं कर सकतीं।

शिष्य। तो दैवीशक्तिपर निर्भर होना क्या दुर्बलताका चिन्ह है।

स्वामीजी। शास्त्रमें निर्भरताको पंचम पुरुषार्थ कह-कर निर्देश किया है। परन्तु हमारे देशमें लोग जिस प्रकार दैवीशक्तिपर निर्भर करते हैं, वह मृत्युका चिन्ह है, महाकापुरुषताकी चरम अवस्था है, किम्भूतकिमाकार एक ईश्वरकी कल्पना कर उसके माथे अपने दोषोंको

चपेकनेकी चेष्टामात्र है। श्रीठाकुरजीमहाराजकी गोहत्या-पापकी जो कहानी है वह तो तुमने सुनी होगी; अन्तमें वह पाप उद्यानस्वामीको ही भोग करना पड़ा। आजकल सब ही 'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि' कहकर पाप व पुण्य दोनोंको ईश्वरके माथे मारते हैं। मानों आप कमल पत्रोंके जलके समान निर्लिप्त हैं। यदि ऐसे ही भाव पर सर्वदा जमे रह सकें तो वे मुक्त हैं। किन्तु अच्छे कार्यके समय 'मैं' और मन्द के समय 'तुम' ऐसी दैवीशक्ति पर निर्भरताका क्या कहना है ! जब तक पूर्ण प्रेम या ज्ञान नहीं होता तब तक निर्भरताकी अवस्था होही नहीं सकती। जो ठीक ठीक निर्भर हो गये हैं उनमें भले बुरेकी भेद बुद्धि नहीं रहती। हम (श्रीरामकृष्णजीके शिष्यों में) नाग महाशय ही ऐसी अवस्थाके उज्ज्वल दृष्टान्त हैं।

अब बात बातमें नागमहाशयका प्रसंग चल पड़ा। स्वामीजी बोले, " ऐसा अनुरागी भक्त और भी दूसरा कोई है ? अहा ! फिर कब उनसे मिलना होगा ? "

शिष्य। माताजी (नागमहाशयकी पत्नी) ने मुझको लिखा है कि आपके दर्शनके निमित्त वे शीघ्र ही कलकत्ते आयेंगे।

स्वामीजी । श्रीठाकुरजी महाराज राजा जनकसे उनकी तुलना किया करते थे । ऐसे जितेन्द्रिय पुरुषका दर्शन होना तो बड़े भाग्यकी बात है, ऐसे लोगोंकी कथा सुननेमेंभी नहीं आती। तुम उनका सत्संग सर्वदा करना। वे श्रीठाकुरजीके अन्तरंगमेंसे एक हैं।

शिष्य । उस देशमें अनेक लोग उनको पागल समझते हैं परन्तु मैंने प्रथमसे ही उनको एक महापुरुष समझा था। वे मुझको बहुत प्रेम करते हैं और मुझ पर उनकी कृपाभी बहुत है।

स्वामीजी । तुमने ऐसे महापुरुषका सत्संग किया है तुम्हें और क्या चिन्ता है ? अनेक जन्मकी तपस्यासे ऐसे महापुरुषोंका सत्संग मिलता है । श्रीनागमहाशय घर पर किस प्रकारसे रहते हैं ?

शिष्य । महाशय, उन्हें तो कभी कोई काम काज करते नहीं पाया । केवल अतिथी सेवारूप कार्यमें लगे रहते हैं । पालबाबू लोग जो कुछ रुपया देते हैं उसके अतिरिक्त खाने पीनेका और कुछ सहारा नहीं है। परन्तु धनियोंके भवनमें जैसी धूम धाम रहती है वैसीही वहां भी देखी । किन्तु अपने भोगके निमित्त एक पैसा भी

व्यय नहीं करते जो कुछ व्यय करते हैं वह केवल पर-सेवार्थ। सेवा-सेवा-यही उनके जीवनका महाव्रत मालूम होता है। ऐसा अनुमान होता है कि प्रत्येक जीवमें, प्रत्येक वस्तुमें, आत्मदर्शन करके वे अभिन्नज्ञानसे जगत्‌की सेवा करनेको व्याकुल हैं। सेवाके लिये अपने शरीरको शरीर नहीं समझते, वास्तवमें मुझे भी सन्देह होता था कि उन्हें शरीरज्ञान है या नहीं। आप जिस अवस्थाको ज्ञानातीत अवस्था (superconscious state) कहते हैं, मेरा अनुमान है कि वह सर्वदा उसी अवस्थामें रहते हैं।

स्वामीजी। ऐसा क्यों न हो? श्रीगुरुजीमहाराज उनसे कितना प्रेम करते थे। वर्त्तमान कालमें श्रीठाकुर-जीके साथियोंमें से एक उन्होंनेही पूर्ववंगमें जन्म लिया है।

षोड़श वल्ली ।

स्थान—बेलुड़, भाड़ेका मठ ।

वर्ष—१८९८ खृष्टाब्द ।

विषय—कश्मीरमें अमरनाथजीका दर्शन-क्षीरभवानीकी मन्दिरमें देवीजीकी वाणीका श्रवण और मनसे सकल संकल्पका त्याग—प्रेतयोनीका अस्तित्व—भूतप्रेत देखनेकी इच्छा मनमें रखना अनुचित-स्वामीजीका प्रेतदर्शन और श्राद्ध व संकल्पसे उसका उद्धार ।

आज दो तीन दिन हुए कि स्वामीजी महाराज कश्मीरसे लौटकर आए हैं। शरीर कुछ स्वस्थ नहीं है। शिष्यके मठमें आतेही स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज बोले, "जबसे कश्मीरसे लौटे हैं स्वामीजो किसीसे कुछ वार्त्तालाप नहीं करते; चुपकेसे स्तब्ध बैठे रहते हैं, तुम स्वामीजीसे कुछ वार्त्तालाप करके उनके मनको नीचेको (अर्थात् जगत्‌के कार्य्योंपर) लानेका यत्न करो"।

शिष्यने ऊपर स्वामीजीके घरमें जाकर देखा कि स्वामीजी मुक्तपद्मासन होकर पूर्व ओर मुंह फेरे बैठे हैं मानो गंभीर ध्यानमें मग्न हैं। मुंहपर हंसी नहीं, उज्वल नयनोंकी दृष्टि बाहरकी ओर नहीं, मानो भीतरही कुछ देख रहे हैं। शिष्यको देखतेही बोले, "बच्चा, आगए,

बैठो"। बस; इतनीही बात की। स्वामीजीके वाम नयनको रक्तवर्ण देखकर शिष्यने पूछा, "आपकी आंख लाल कैसे होरही है!" "यह कुछ नहीं है" कहकर स्वामीजी फिर स्तब्ध होकर बैठे रहे। बहुत समयतक बैठनेपरभी जब स्वामीजीने कुछभी वार्त्तालाप नहीं किया तब शिष्य व्याकुल होकर स्वामीजीके चरण कमलोंको स्पर्शकर बोला, "श्रीअमरनाथजीमें आपने जोकुछ प्रत्यक्ष कियाहै क्या वह सब मुझको नहीं बतलाइयेगा"। पादोंके पर-शसे स्वामीजी कुछ चौंकसे उठे दृष्टिभी कुछ बाहरकी ओर खुली और बोले, "जबसे अमरनाथजीका दर्शन किया है चौबीसों घन्टे मानो शिवजी महाराज हमारे मस्तकमें बैठे रहते हैं; किसी प्रकारसेभी हटते नहीं"। शिष्य इनबातोंको सुनकर अवाक् होगया।

स्वामीजी। अमरनाथपर और फिर क्षीरभवानीजीके मन्दिरमें मैंने बहुत तपस्या की थी। जाओ, मेरे लिए चिलम तो भर लाओ।

शिष्य प्रफुल्लमनसे स्वामीजीकी आज्ञानुसार चिलम भर लाया। स्वामीजी धीरे धीरे धूम्रपान करते हुए कहने लगे, "अमरनाथको जातेसमय पहाड़की एक खड़ी

चढ़ाईसे होकर गया था । उस पगदण्डीसे पहाड़ीलोगही चढ़ाई उतराई करते हैं, कोई यात्री उधरसे नहीं आता । परन्तु इसी मार्गसे होकर जानेकी एक पच्च सी पड़गईथी । उसही परिश्रमसे शरीर कुछ थका हुआ है । वहां ऐसा कड़ा जाड़ा पड़ता है कि शरीरमें सूईसी चुभती हैं ।

शिष्य । मैंने सुना है कि लोग नग्न होकर अमरनाथजीका दर्शन करते हैं । क्या यह बात सत्य है ?

स्वामीजी । मैंनेभी कौपीनमात्र धारणकर और भस्म लगाकर गुफ़ामें प्रवेश किया था; तव ठन्डा या गरम कुछ मालूम नहीं होताथा । परन्तु मन्दिरसे निकलनेपर ही ठन्डसे मानो जमकर जड़ होगया था ।

शिष्य । क्या कबूतरभी देखनेमें आया था ? यहसुना है कि ठन्डके मारे किसी जीव जन्तुको वहां वसते नहीं पाया जाता है, केवल सफ़ेद कबूतरोंकी एक टुकड़ी कहींसे कभी कभी आजाती है ।

स्वामीजी । हां, तीन चार सफ़ेद कबूतरोंको देखा था । वे उसी गुफ़ामें या पासके किसी पहाड़में रहते हैं यह ठीक अनुमान नहीं करसका ।

शिष्य । महाशय, लोगोंसे सुना है कि यदि गुफ़ासे

बाहर निकलकर सफ़ेद कबूतरोंको देखे तो समझतेहैं कि यथार्थ शिवके दर्शन हुए।

स्वामीजी बोले, "सुना है कि कबूतर देखनेसे जिसके मनमें जैसी ईच्छा (कामना) रहती है, वही सिद्ध होती है"।

अब स्वामीजी फिर कहने लगे कि लौटते समय जिस मार्गसे सब यात्री आते हैं, वेभी उसी मार्गसे श्रीनगरको आयेथे। श्रीनगरमें पहुंचनेके कुछ दिन पीछे क्षीर भवानीजीके दर्शनको गए और सातदिन वहां ठहरकर देवपरको क्षीर चढ़ाकर उनके उद्देशमें पूजा व हवन कियाथा। प्रतिदिन वहां एकमन दूधकी क्षीरका भोग चढ़ाते थे और हवन करतेथे। एकदिन पूजाकरते समय यह चिन्ता मनमें उदित हुई, "माता भवानीजो यहां सत्यही कितने कालसे प्रकाशित हैं! प्राचीन समयमें यवनोंने यहां आकर उनके मन्दिरको विध्वंस करदिया और यहांके लोग कुछ कह नहीं सके। हाय! यदि मैं उस समय होता तो चुपचाप यह कभी नहीं देखता"। इसीप्रकार चिन्तासे जब उनका मन दुःख और क्षोभके मारे अत्यन्त व्याकुल होगयाथा तब उनके सुननेमें स्पष्ट

आयाथा कि माताजी कहरही थी-" मेरी इच्छासेही यवनोंने मन्दिरका विध्वंस किया है, जीर्ण मन्दिरमें रहनेकी मेरी इच्छा है। क्या मेरी इच्छासे अभी यहां सातमंज़िला सोनेका मन्दिर नहीं बन सकता?" तू क्या करसकता? मैं तेरी रक्षा करूंगा या तू मेरी रक्षा करेगा"? स्वामीजी बोले, " उस दैववाणीको सुननेके समयसे मेरे मनमें और कोई संकल्प नहीं है। मठवठ बनानेका संकल्प छोड़दिया है। माताजीकी जो इच्छा है वही होगी।" शिष्य अवाक् होकर सोचने लगा कि इन्होंनेही तो एकदिन कहाथा, " जो कुछ देखता है या सुनता है वे केवल तेरे भीतर अवस्थित आत्माकी प्रतिध्वनिमात्र है। बाहर कुछभी नहीं है।" अब स्वामीजीसे उसने स्पष्ट पूंछा, "महाशय, आपनेतो कहाथा कि यह सब दैववाणी हमारे भीतरके भावोंकी बाह्य प्रतिध्वनिमात्र है।" स्वामीजीने बड़ी गभीरतासे उत्तर दिया, "भीतर हो या बाहर, इससे क्या? यदि तुम अपने कानोंसे मेरे समान ऐसी अशरीरी कथाको सुनो तो क्या उसे मिथ्या कहसकते हो? दैववाणी सचमुच सुनाई देती है, हमलोग जैसे वार्त्तालाप कररहे हैं, ठीक इसी प्रकारकी।"

शिष्यने विना कोई द्विरुक्ति किये हुए स्वामीजीके वाक्योंको शिरोधार्य्य करलिया: क्योंकि स्वामीजीकी कथाओंमें एक ऐसी अद्भुत् शक्ति थी कि उन्हें बिना माने नहीं रहा जाता था-युक्ति तर्क सब धरे रहजाते थे !

शिष्यने अब प्रेतात्माओंकी बात छोड़ी। "महाशय जो सब भूतप्रेतादि योनियोंकी बात सुनी जाती है, शास्त्रोंनेभी जिसका वारवार समर्थन किया है, क्यों यह सब सत्य है ?

स्वामीजी। अवश्य सत्य है। क्या जिसको तुम नहीं देखते वह सत्य नहीं होसकता! तेरी दृष्टिसे बाहर दूर दूरपर कितनेही सहस्रों ब्रह्माण्ड घूम रहे हैं, तुझे नहीं दीखपड़ते तो क्या उनका अस्तित्वभी नहीं है। भूतप्रेत हैं तो होने दे परन्तु इनके झगड़ेमें अपना मन न लगा। इस शरीरमें जो आत्मा है उसको प्रत्यक्ष करनाही तुम्हारा कार्य्य है। उसके प्रत्यक्ष करनेसे भूत प्रेत सब तेरे दासोंके दास होजायेंगे।

शिष्य। परन्तु महाशय, ऐसा अनुमान होता है कि उनको देखनेसे पुनर्जन्म पर विश्वास बहुत दृढ़ होता है और परलोक पर कुछ अविश्वास नहीं रहता।

थोड़ा बड़ी।

स्वामीजी। तुम सब तो महावीर हो, क्या तुम्हेंभी परलोक पर विश्वास करनेके लिये भूत प्रेतों का दर्शन आवश्यक है? कितने शास्त्र पढ़े, कितने विज्ञान पढ़े, इस विराट विश्वके कितने गूढ़ तत्त्वोंको जानों, इतने पर भी आत्मज्ञान लाभ करनेके लिये क्या भूत प्रेतोंके दर्शन करना ही पड़ेगा? छीः! छीः!!

शिष्य। अच्छा, महाशय, आपने स्वयं कभी भूत प्रेतों को देखा है?

स्वामीजी। संसार-सम्पर्कीय कोई व्यक्ति प्रेत होकर कभी कभी मुझको दर्शन देता था। कभी दूर दूरके समाचारभी लाता था। परन्तु परीक्षा करके देखा कि उसकी सब बातें सदा ठीक नहीं होती थी। पर किसी एक विशेष तीर्थ पर जाकर "वह मुक्त होजाये" ऐसी प्रार्थना करने पर उसका दर्शन फिर मुझे नहीं हुआ।

श्राद्धादियोंसे प्रेतात्माओंकी तृप्ति होती है या नहीं अब शिष्यके इस प्रश्नको पूछने पर स्वामीजी बोले, "यह कुछ असम्भव नहीं है।" शिष्यके इस विषयकी युक्ति या प्रमाण माँगने पर स्वामीजीने कहा, "और किसी दिन इस प्रसंगको भली भांति समझा दूंगा।

श्राद्धादिसे प्रेतात्माओंकी तृप्ति होती है, इस विषयकी अखण्डनीय युक्तियां हैं। आज मेरा शरीर कुछ अस्वस्थ है, और किसी दिन इसको समझाऊंगा।" परन्तु शिष्य को स्वामीजीसे यह प्रश्न करनेका अवसर उसके जीवन भरमें फिर नहीं मिला।

सप्तदश वल्ली।

स्थान—बेलूड़—भाड़ेका मठ।

वर्ष—१८९८ (नवम्बर)

विषय—स्वामीजीकी संस्कृत रचना—श्रीरामकृष्ण देवजीके आगमनसे भाव व भाषामें प्राणका संचार—भाषामें किस प्रकारसे ओजस्विता (जीवनी शक्ति) लानी होगी—भयको त्याग देना होगा—भयसेही दुर्बलता व पापकी वृद्धि—सब अवस्थामें अविचल रहना—शास्त्रपाठ करनेकी उपकारिता—स्वामीजीका अष्टाध्यायी पाणिनीका पठन—ज्ञानके उदयसे किसी विषयका अद्भुत प्रतीत न होना।

मठकी स्थिति अभी तक बेलूड़में नीलाम्बर बाबूके उद्यानमेंही है। अब अग्रहायन महीनेका अन्त है। इस समय स्वामीजी संस्कृत शास्त्रादिकी बहुधा आलोचनामें तत्पर हैं। 'आचण्डालाप्रतिहतरयः' इत्यादि श्लोकोंकी रचना इसी समय की थी। आज स्वामीजी "ओं ह्रीं ऋतं" इत्यादि स्तोत्रकी रचना की और शिष्यको देकर कहा, "देखना इसमें छन्दपतनादि कोई दोष तो नहीं है ?" शिष्यने इसको स्वीकार किया और उसकी एक नकल उतार ली।

जिस दिन स्वामीजीने इस स्तोत्रकी रचना की थी उस दिन मानो स्वामीजीकी जिह्वा पर सरस्वती आरूढ़ा थी। लगभग दो घण्टे तक स्वामीजीने शिष्यसे सुन्दर और सुशोभित संस्कृत भाषामें वार्त्तालाप की थी ऐसा सुललित वाक्य विन्यास, शिष्यने बड़े बड़े पण्डितों के मुंहसेभी कभी नहीं सुना था।

जो हो सो हो, शिष्यके स्तोत्रकी नकल उतार लेने पर स्वामीजी उससे बोले, "देखो, किसी भावमें तन्मय होकर लिखते लिखते कभी कभी मेरा व्याकरण-गत स्खलन होता है, इस लिये तुम लोगोंसे इन लेखोंको देख भाल लेनेको कहता हूं।

शिष्य। वे स्खलन नहीं हैं—वे आर्षप्रयोग हैं।

स्वामीजी। तुमने तो ऐसा कह दिया परन्तु साधारण लोग ऐसा क्यों समझेंगे? उस दिन मैंने "हिन्दूधर्म क्या है" इस विषय पर बंगला भाषामें एक लेख लिखा तो तुम्हींमेंसे ही किसी किसीने कहा कि इसकी भाषा बड़ी कठिन होगई है। मेरा अनुमान यह है कि सब वस्तुओं की नाईं समयमें भाषा व भाव भी फीके पड़ जाते हैं। आज कल इस देशमें यही हुआ है ऐसा जान

पड़ता है। श्री गुरुमहाराजके आगमनसे भाव व भाषामें फिर नवीन प्रवाह आया है। अब सबको नवीन सांचेमें ढालना है, नवीन प्रतिभाकी मोहर लगा कर सब विषयों का प्रचार करना पड़ेगा। देखोना, पूर्व समयके संन्यासियोंकी चाल ढाल टूट कर कैसी एक नवीन परिपाटी बनी है। इसके विरुद्ध समाजमें बहुत कुछ प्रतिवादभी हो रहा है; परन्तु उससे क्या हुआ; और क्या हम ही उससे डरें? अभी इन संन्यासियोंको प्रचार कार्यके निमित्त दूर दूर पर जाना है। यदि प्राचीन संन्यासियों का वेश धारण कर अर्थात् भस्म लगाकर और नग्नशरीर होकर वे कहीं विदेशको जाना चाहें तो प्रथम जहाज़ पर ही उनको सवार होने नहीं देंगे। यदि किसी प्रकारसे विदेश पहुंचभी जावें तो उनको कारागृहमें अवस्थान करना होगा। देश सभ्यता और समयोपयोगी परिवर्त्तन कुछ कुछ सब विषयोंमें ही कर लेना पड़ेगा। अब मैं बंगलाभाषामें प्रबन्ध लिखनेकी सोच रहा हूं। सम्भव है कि साहित्यसेवक लोग उसको पढ़कर निन्दा करेंगे। करने दो—मैं बंगला भाषाको नवीन सांचेमें ढालनेका प्रयत्न अवश्य करूंगा। आजकलके लेखक जब लिखते

बैठते हैं तब क्रिया पदका बहुत प्रयोग करते हैं । इससे भाषामें शक्ति नहीं आती । विशेषण द्वारा क्रियापदोंका भाव प्रकाश करनेसे भाषाकी ओजस्विता अधिक बढ़ती है। अबसे इस प्रकार लिखनेकी चेष्टा करो तो । 'उद्बोधन' में ऐसी भाषामें लेख लिखनेका प्रयत्न करना। भाषामें क्रियापद प्रयोग करनेका क्या तात्पर्य है जानते हो? इस प्रकारसे भावोंका विराम मिलता है। इसलिये अधिक क्रियापदोंका प्रयोग करना शीघ्र शीघ्र श्वास लेनेका समान दुर्बलताका चिन्हमात्र है । इसी लिये बंगला भाषामें अच्छी वक्तृतायें नहीं दी जा सकती । जिनका किसी भाषापर अच्छा अधिकार है वे शीघ्रशीघ्र भावोंको रोक नहीं देते। दाल भात भोजन करके तेरा शरीर जैसा दुर्बल हो गया है भाषाभी ठीक वैसी ही हो गई है। पान भोजन, चाल चलन भाव भाषामें तेजस्विता लानी होगी। चारों ओर प्राणका विस्तार करना होगा सब विषयोंमें रक्त प्रवाह प्रेरित करना होगा जिससे सब विषयोंमें एक प्राणका स्पन्दन अनुभव हो तबही इस घोर जीवन संग्राममें देशके लोग बच सकेंगे। नहीं तो शीघ्रही यह देश व जाति मृत्युरूपी छायामें लय

हो जावेगी।

शिष्य। महाशय, बहुत दिनों से इस देशके लोगों का धातु एक विशेष प्रकारका होगया है। क्या उसका परिवर्त्तन होना शीघ्र सम्भव है?

स्वामीजी। यदि तुम प्राचीन चालको बुरा समझते हो तो मैंने जैसा बतलाया उस नवीनभावको सीख क्यों न लो। तुम्हें देखकर और भी दसजन वैसा ही करेंगे। फिर उनसे और पचास जन सीखेंगे। इस प्रकारसे समयमें समस्त जातिमें यह नवीनभाव जाग उठेगा। यदि तुम जानबूझ कर भी ऐसा कार्य न करो तो समझूंगा कि तुम केवल बातोंमें ही पण्डित हो और कार्य्यमें मूर्ख।

शिष्य। आपके वचनसे तो बड़े साहसका संचार होता है। उत्साह, बल और तेजसे हृदय पूर्ण होता है।

स्वामीजी। हृदयमें धीरे धीरे बलको लाना होगा। यदि एक भी यथार्थ "मनुष्य" बनजाय तो लाख वक्तृताओं का फल हो। मन और मुंहको एक करके भावों (ideas) को जीवनमें फलाना होगा। इसीको श्रीठाकुरजी कहा करतेथे, "भावके घरमें किसी प्रकार

की चोरी न होने पाय" । सब विषयमें व्यवहारिक (practical) बनना होगा अर्थात् अपने अपने कार्य्य द्वारा मत या भावका विकाश करना होगा। केवल मतों का प्रादुर्भाव से देश दबा पड़ा है । श्रीठाकुरजीके जो यथार्थ सन्तान होंगे वे सब धर्मभावोंको कार्य्यमें परिणित करने का उपाय दिखायेंगे । लोग या समाजकी बातों पर ध्यान न देकर एकाग्र मनसे अपना कार्य करते रहेंगे। तुलसीदासजीके दोहे में जो है सो क्या तूने नहीं सुना ?

"हाथी चले बजारमें कुत्ता भौंके हज़ार ।
साधुन को दुर्भाव नहीं जब निन्दे संसार ॥"

इसी भावसे चलना है । जन साधारणको सामान्य कीड़ा मकोड़ा समझना होगा। उसकी बुरी भली बातोंको सुननेसे जीवनही भरमें कोई किसी प्रकार महत् कार्य को नहीं कर सकता । "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" अर्थात् शरीर और मनमें दृढ़ता न रहनेसे कोईभी इस आत्माको प्राप्त नहीं कर सकता । प्रथम पुष्टिकर उत्तम भोजनसे शरीरको बलिष्ट करना है । तबही तो मनका बल बढ़ेगा । मन तो शरीरका ही सूक्ष्म अंश है। मन

और मुखमें खूब दृढ़ता होनी चाहिये। "मैं हीन हूं", "मैं दीन हूं" ऐसा कहते कहते मनुष्य दीन ही होजाता है। इस लिये शास्त्रकार ने कहाहै—

"मुक्ताभिमानी मुक्तोहि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीति सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्॥"

अष्टावक्र गीता।

जिसके हृदयमें मुक्त अभिमान सर्वदा जागरूक है वह मुक्त होजाता है और जो 'मैं बद्ध हूं' ऐसी चिन्ता रखता है समझलोकि उसकी जन्मजन्मान्तर तक बन्धन दशा रहेगी। ऐहिक व पारमार्थिक दोनो पक्षमें ही इस बातको सत्य जानना। इस जीवनमें जो सर्वदा हताश चित्त रहते हैं उनसे कोई भी कार्य्य नहीं हो सकता। वे जन्म प्रति जन्म हा हताश करते हुए आते हैं और चले जाते हैं। "वीर भोग्या वसुन्धरा" अर्थात् वीर लोग ही वसुन्धरा को भोग करते हैं-यह वचन नितान्त सत्य है। सर्वदा कहो 'अभीः' 'अभीः' (मैं भयशुन्य हूं, मैं भयशून्य हूं) सबको सुनाओ, 'माभैः' 'माभैः' (भय न करो, भय न करो)। भय ही मृत्यु, भय ही पाप, भय ही नरक, भय ही अधर्म्म, भय ही व्यभिचार

है। जगत्में जो कुछ असत् या मिथ्याभाव (negative thoughts) है, वह सब इस भय रूप शैतानसे उत्पन्न हुआ है। इस भयने ही सूर्य्यके सूर्य्यत्वको भयनेही वायु के वायुत्वको भयने ही यमके यमत्वको अपने अपने स्थान पर रख छोड़ा है, अपनी अपनी सीमासे किसीको बाहर नहीं जाने देता। इस लिये श्रुति कहती है—

" भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्य्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ "

कठोपनिषद्।

जिस दिन इन्द्र, चन्द्र, वायु वरुण, भयशून्य होंगे उसी दिन सब ब्रह्ममें लीन होजायेंगे। सृष्टिरूप अध्यास कालय साधित होगा। इसीलिये कहता हूं, 'अभीः' 'अभीः'।

बोलते बोलते स्वामीजीके वे नीलोत्पल नयनप्रान्त मानो अरुण रंगसे रंजित होगये। मानो "अभीः" मूर्त्तिमान् होकर स्वामीरूपसे शिष्यके सामने सदेह अवस्थान कर रहा था। शिष्य उस अभयमूर्त्ति का दर्शन कर मनमें सोचने लगा, " आश्चर्य्य! इस महापुरुषके पास रहने से और बातोंको सुननेसे मृत्यु भय भी मानो कहीं भाग जाता है।

रामदश वही।

स्वामीजी फिर कहने लगे, "यह शरीर धारण कर के तुम कितने ही सुख दुःख तथा सम्पद् विपद्की तरङ्गोंमें हिलाये जाओगे परन्तु जान लेना वे सब मुहूर्त्त स्थायी हैं। इन सबको अपने ध्यानमेंभी नहीं लाना। मैं अजर, अमर, चिन्मय आत्मा हूं इस भावको दृढ़ता के साथ धारण कर जीवन बिताना होगा। 'मेरा जन्म नहीं है, मेरी मृत्यु नहीं है, मैं निर्लेप आत्मा हूं' ऐसी धारणामें निःशेष तन्मय होजाओ। एक बार लीन होजानेसे दुःख या कष्ट के समय यह भाव अपने ही आप मनमें उदय होगा, इसके लिये फिर चेष्टा करने की कुछ आवश्यकता नहीं रहेगी। कुछ ही दिन हुए मैं वैद्यनाथ देवघरमें प्रियनाथ मुखर्जीके घर पर गया था। वहां ऐसा सांस उठा कि दम निकलनेको होगया। परन्तु प्रत्येक श्वासके साथ भीतरसे "सोऽहं, सोऽहं" गम्भीर ध्वनि उठने लगी। तकिये पर सहारा देकर प्राणवायु निकलने की अपेक्षा कर रहा था और सुन रहा था कि भीतर केवल "सोऽहं, सोऽहं" ध्वनि हो रही है: केवल यह सुनने लगा, "एकमेवाद्वयंब्रह्म नेह नाना-स्ति किञ्च"।

शिष्य स्तम्भित होकर बोला, आपके साथ वार्त्ता-लाप करने से और आपकी सब अनुभूतियोंको सुननेसे शास्त्र पढ़ने की फिर आवश्यकता नहीं रहती ।

स्वामीजी । अरे नहीं, शास्त्रोंको पढ़ना भी उचित है । ज्ञान लाभ करने के लिये शास्त्र पढ़ने की बहुत आवश्यकता है । मैं मठमें शीघ्र ही शास्त्रादि पढ़ानेकी श्रेणी (class) खोलूंगा । वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत पढ़ाई जायगी । अष्टाध्यायी पढ़ाऊंगा ।

शिष्य । क्या आपने पाणिनिकी अष्टाध्यायी पढ़ी है ?

स्वामीजी । जब जयपुरमें था तब एक बड़े भारी वैयाकरणके साथ साक्षात् हुआ । उससे व्याकरण पढ़नेकी इच्छा हुई । व्याकरणमें बड़े पण्डित होनेपरभी, उनमें अध्यापना करनेकी शक्ति बहुत नहीं थी । मुझे तीन दिनतक प्रथम सूत्रका भाष्य समझाया, तबभी मैं उसकी धारणा नहीं करसका । चौथे दिन अध्यापकजी विरक्त होकर बोले, 'स्वामीजी, जब तीन दिनमेंभी मैं प्रथम सूत्रका मर्म्म आपको नहीं समझासका तो अनुमान होता है कि मेरी अध्यापनासे आपको कोई लाभ नहीं होगा । यह सुनकर मनमें बड़ी भर्त्सना उठी । भोजन व निद्राको

त्यागकर प्रथम सूत्रका भाष्य अपने आपही पढ़ने लगा। तीन घन्टेमें उस सूत्रभाष्यका अर्थ मानो "करामलक"के समान प्रत्यक्ष होगया। तत्पश्चात् अध्यापकजीके पास जाकर सब व्याख्याओंका तात्पर्य्य बातों बातोंमें समझा दिया। अध्यापकजी सुनकर बोले, "मैं तीन दिनसे समझाकर जो न करसका" आपने तीन घन्टेमें उसकी ऐसी चमत्कार व्याख्याका कैसे उद्धार किया?" उस दिनसे प्रतिदिन ज्वार भाटेका समान अध्यायपर अध्याय पढ़ता चला गया। मनकी एकाग्रता होनेसे सब सिद्ध होता है-सुमेरुपर्वतकोभी चूर्णकरना सम्भव है।

शिष्य। आपकी सब बातेंही अद्भुत हैं।

स्वामीजी। "अद्भुत" स्वयं कोई विशेष बात नहीं है, अज्ञताही अन्धकार है। इसमें सब ढके रहनेके कारण अद्भुत जान पड़ता है। ज्ञानालोकसे उद्भिन्न होनेपर फिर किसीमें अद्भुतत्व नहीं रहता। अघटन-घटन पटीयसी जो माया है, वहभी छिपजाती है। जिसको जाननेसे सबकुछ जानाजाता है, उसको जानो, उसके विषयपर चिन्तन करो। उस आत्माके प्रत्यक्ष होनेसे शास्त्रोंके अर्थ "करामलकवत्" प्रत्यक्ष होंगे। जब प्राचीन ऋषियोंको

ऐसा हुआथा तो फिर हम लोगोंका क्यों नहीं होगा ? हमभी तो मनुष्य हैं। एक जनके जीवनमें जो एकवार हुआ है, चेष्टा करनेसे वह अवश्यही औरोंके जीवनमें पुनराय सिद्ध होगा। History repeats itself अर्थात् जो एकवार होलिया है वही वारवार होता है। यह आत्मा सर्व भूतमें समान है केवल प्रत्येक भूतमें उसके विकाशका तारतम्य मात्र है । इस आत्माका विकाश करनेकीचेष्टा करो। देखोगे कि बुद्धि सब विषयोंमें प्रवेश करेगी अनात्मज्ञ पुरुषोंकी बुद्धि एकदेशदर्शिनी होती है। आत्मज्ञ पुरुषोंकी बुद्धि सर्वग्रासिनी होती है। आत्म-प्रकाश होनेसे, देखोगे कि दर्शन विज्ञान सब तुम्हारे आयत्त होजायेंगे। सिंहगर्ज्जनसे आत्माकी महिकाकी घोषणा करो। जीवको अभय देकर कहो, "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"। 'Awake, arise and stop not till the goal is reached.

अष्टादश वल्ली।

स्थान— बेलूड़-भाड़ेका मठ।

वर्ष—१८९८ खृष्टाब्द।

विषय—निर्विकल्प समाधिपर स्वामीजीका व्याख्यान--इस समाधिमें कौन लोग फिर संसारमें लौटकर आसकते हैं--अवतार पुरुषोंका अद्भुत शक्तिपर व्याख्यान और उस विषयपर युक्ति व प्रमाण--शिष्य द्वारा स्वामीजीकी पूजा।

आज दो दिनसे शिष्य बेलूड़में नीलाम्बर बाबूके भवनमें स्वामीजीके पास है। कलकत्तेसे अनेक युवकोंका इस समय स्वामीजीके पास गमनागमन रहनेके कारण आजकल मानो मठपर बड़ा उत्सव होरहा है। कितनी धर्म्म चर्चा, कितना साधन भजनका उद्यम, दीनदुखियोंके कष्टदूर करनेको कितने उपायकी आलोचना होरही है! बड़े उत्साही संन्यासी महाराजलोग महादेवजीके गणोंके समान स्वामीजीकी आज्ञाका पालन करनेको उन्मुख होकर अवस्थान कररहे हैं। स्वामी प्रेमानन्दजीने श्रीठाकुरजी महाराजकी सेवाका भार ग्रहण किया है। मठमें पूजा व प्रसादके लिये बड़ा आयोजन है। समागत

भद्रलोगोंके लिये प्रसाद सर्वदा तैयार है।

आज स्वामीजीने शिष्यको अपनी कक्षामें रातको रहनेकी आज्ञा दी है। स्वामीजीकी सेवा करनेका अधिकर पाकर शिष्यका हृदय आज आनन्दसे परिपूर्ण है। प्रसाद पाकर वह स्वामीजीकी पदसेवा कर रहा है। इतनेमें स्वामीजी बोले, "ऐसे स्थानकोभी छोड़कर तुम कलकत्तेको जाना चाहते हो? यहाँ कैसा पवित्र भाव, कैसी गंगाजीकी वायु, कैसा सब साधुओंका समागम है! ऐसा स्थान क्या और कहीं ढूंढ़नेसे मिलेगा?

शिष्य। महाशय, बहुत जन्मोंकी तपस्यासे आपका सत्संग मुझे मिला है। अब कृपया ऐसा उपाय किजीये जिससे मैं फिर मायामोहमें न फंस जाऊं। अब प्रत्यक्ष अनुभूतिके लिये मन कभी कभी बड़ा व्याकुल होता है।

स्वामीजी। मेरा भी इस प्रकार बहुत हुआ है। काशीपुरके उद्यानमें एकदिन श्रीठाकुरजीसे बड़ी व्याकुलतासे अपनी प्रार्थना ज्ञापन कीथी। उसदिन सन्ध्याके समय ध्यान करते करते अपने शरीरको खोजा तो नहीं पाया। ऐसा प्रतीत हुआथा कि शरीर बिलकुल है ही नहीं। चांद, सूरज, देश, काल आकाश सब मानो

एकाकार होकर कहीं लय होगयेथे। देहादि बुद्धिका प्रायः अभाव होगया था और 'मैं' भी बस लयसा ही हो रहाथा। परन्तु कुछ 'अहं' था इसीलिये उस समाधि अवस्थासे लौटा था। इस प्रकार समाधिकालमें ही 'मैं' और 'ब्रह्म' में भेद नहीं रहता, सब एक होजाता है मानो महा समुद्र-जलही जल है और कुछ नहीं है; भाव और भाषाका अन्त होजाता है। "अवाङ्मनसोगोचरम्" जो वचन है उसकी उपलब्धि इसी समय हुई थी। नहीं तो जब साधक 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा विचार करता है या कहता है तब भी 'मैं' व 'ब्रह्म' ये दो पदार्थ पृथक रहते हैं अर्थात् द्वैतभाव रहता है। उस अवस्थाको फिर प्राप्त करनेकी मैंने वारम्वार चेष्टा की परन्तु नहीं पासका। श्रीठाकुरजीसे कहनेपर वे बोले, "उस अवस्थामें दिनरात रहनेसे माता भगवतीका कार्य्य तुमसे नहीं होगा। इसलिये उस अवस्थाको फिर प्राप्त न करसकोगे; कार्य्यके अन्त होने पर वह अवस्था फिर आजायगी"।

शिष्य। तो क्या निःशेष समाधि वा ठीक ठीक निर्विकल्प समाधि होनेपर, कोई फिर अहंज्ञानका आश्रय

लेकर द्वैतभावके राजत्व (इस संसार) में नहीं लौट सकता ?

स्वामीजी । श्रीठाकुरजी कहा करतेथे कि एकमात्र अवतार पुरुषही जीवकी मंगलकामना कर ऐसी समाधिसे लौट सकते हैं । साधारण जीवोंका फिर व्युत्थान नहीं होता; केवल इक्कीस दिनतक जीवित अवस्थामें रहनेपर उनके शरीर सूखे पत्तेके समान संसार रूप वृक्षसे झड़कर गिर पड़ते हैं ।

शिष्य । मनके विलुप्त होने पर जब समाधि होती है मनकी जब कोई लहर नहीं रहती तब फिर विक्षेप (अर्थात् अहं ज्ञानका आश्रय लेकर संसारमें लौटने) की क्या सम्भावना है ? जब मनही नहीं रहा तब कौन या किस लिये समाधि अवस्थाको छोड़कर द्वैतराज्यमें उतर आयेगा ?

स्वामीजी । वेदान्तशास्त्रोंका अभिप्राय यह है कि निःशेष निरोध समाधिसे पुनरावृत्ति नहीं होती ; यथा—" अनावृत्तिः शब्दात् " । परन्तु अवतार लोग जीवोंके मंगलके निमित्त एक आध सामान्य वासना रख लेते हैं उसी आश्रयसे ज्ञानातीत अद्वैतभूमि (super con-

scious state) से " मैं तुम " की ज्ञानमूलक द्वैत-भूमि (conscious state) में आते हैं।

शिष्य। किन्तु, महाशय, यदि एक आध वासनाभी रह जावे तो उसे निःशेष निरोध समाधि अवस्था कैसे कह सकते हैं ? क्योंकि शास्त्रमें है कि निःशेष निर्विकल्प समाधिमें मनकी सब वृत्तियां सब वासनायें निरोध या ध्वंस होजाती हैं।

स्वामीजी। महाप्रलयके पश्चात् तो फिर सृष्टि ही कैसे होती है ? महाप्रलयमेंभी तो सब कुछ ब्रह्ममें लय होजाता है। परन्तु लय होने पर भी शास्त्रमें सृष्टिप्रसंग सुननेमें आता है—सृष्टि व लय प्रवाहाकारसे पुनः चलते रहते हैं। महाप्रलयके पश्चात् सृष्टि व लय के पुनः आवर्त्तनकी नाँई अवतार पुरुषोंका निरोध व व्युत्थान भी अप्रासंगिक क्यों होगा ?

शिष्य। यदि मैं कहूं कि लय कालमें पुनः सृष्टिका बीज ब्रह्ममें लीनप्राय रहता है और वह महाप्रलय या निरोध समाधि नहीं है ! परन्तु वह केवल सृष्टिके बीज व शक्ति का एक अव्यक्त (potential) रूप धारण करना है।

स्वामीजी । इसके उत्तरमें मैं कहूंगा कि जिस ब्रह्ममें किसी विशेषणका अध्यास नहीं है जो निर्लेप व निर्गुण है उसके द्वारा इस सृष्टिका बहिर्गत (projected) होना कैसे सम्भव है ।

शिष्य । यह बहिर्गमन (projection) तो यथार्थ नहीं । आपके वचनके उत्तरमें शास्त्रने कहा है कि ब्रह्मसे सृष्टि का विकाश मरुस्थलीमें मृगतृष्णाके समान दिखाई देता तो है परन्तु वास्तवमें सृष्टि प्रभृति कुछ भी नहीं है । भाव वस्तु ब्रह्मके अभावसे या मिथ्या माया शक्तिके वशसे ऐसा भ्रम दिखाई देता है ।

स्वामीजी । यदि सृष्टि ही मिथ्या है तो तुम जीव की निर्विकल्प समाधि व समाधिसे व्युत्थान को भी मिथ्या कहकर मान तो सकते हो । जीव स्वतः ही ब्रह्म स्वरूप है । उसके फिर बन्धनकी अनुभूति कैसी ? " मैं आत्मा हूं " ऐसा जो तुम अनुभव करना चाहते हो वह भी तो भ्रमही हुआ क्यों कि शास्त्र कहता है कि तुम तो पहिले से ही ब्रह्म हो (you are already that) अतएव " अयमेवहि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि " —

समाधि लाभ करना जो तुम चाहते हो वहा तुम्हारा बन्धन है ।

शिष्य । यह तो बड़ी कठिन बात है । यदि मैं ब्रह्म ही हूं तो सर्वदा इस विषयकी अनुभूति क्यों नहीं होती ?

स्वामीजी । यदि "मैं-तुम" को राजत्व द्वैत भूमि (conscious plane) में इस बातका अनुभव करना हो तो एक करण वा जिससे अनुभव हो सके ऐसे एक पदार्थ (some instrumentality) की आवश्यकता है । मनही हमारा वह करण है । परन्तु मन पदार्थ तो जड़ है । उसके पीछे जो आत्मा है उसकी प्रभासे मन चैतन्यवत् केवल प्रतिभात है । इस लिये पञ्चदशीकारने कहा है, "चिच्छायावेशतः शक्तिश्चेतनेव विभाति सा" अर्थात् चित्स्वरूप आत्माकी परछाईके आवेशसे शक्ति को चैतन्यमयी कहकर अनुमान करते हैं और इस लिये मनकोभी चैतन्य पदार्थ कह कर मानते हैं । अतएव यह निश्चित है कि मनके द्वारा शुद्धचैतन्यस्वरूप आत्माको नहीं जान सकते । मनके पार पहुंचना है । मनके पार तो कोई करण नहीं है--एक आत्मा ही है । अतएव जिसको जानना चाहते हो वही फिर करणस्थानीय हो

जाता है। कर्त्ता, कर्म, करण एक होजाता है। इस लिये श्रुति कहती है, "विज्ञातारमरेकेनविजानीयात्"। इस का निचोड़ यह है कि द्वैतभूमि (conscious plane) के ऊपर ऐसी एक अवस्था है जहां कर्त्ता, कर्म्म, करणादिमें कोई द्वैतभाव नहीं है। मनके विरोध होनेसे यह प्रत्यक्ष होती है। और कोई उचित भाषा न होनेके कारण इस अवस्थाको 'प्रत्यक्ष' करना कह रहा हूं; नहीं तो इस अनुभव को प्रकाश करनेके लिये कोई भाषा नहीं है। श्रीशङ्कराचार्य इसको 'अपरोक्षानुभूति' कह गए हैं। ऐसी प्रत्यक्षानुभूति वा अपरोक्षानुभूति होने पर भी अवतार लोग नीचे अद्वैतभूमिपर उतरकर उसकी कुछ कुछ झलक दिखाते हैं। इसी लिये कहते हैं कि आप्त पुरुषोंके अनुभवसे ही वेदादि शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है। साधारण जीवोंकी अवस्था किन्तु उस निमकके पुतले की नाई है जो कि समुद्रको नापने गया और स्वयंही उसमें घुल गया। समझे ना? तंतबात यह है कि तुम्हें इतना ही जानना होगा कि तुम वही नित्यकाल ब्रह्म हो। तुम तो पहिलेसे ही वह हो, केवल एक जड़रूपी मन (जिसको शास्त्र ने माया कहा है) बीचमें पड़कर तुम्हें

इसको समझने नहीं देता। सूक्ष्म जड़रूप उपादानोंसे निर्मित मन पदार्थके प्रशमित होने पर आत्मा अपनी प्रभासे आपही उद्भासित होता है। यह माया व मन जो मिथ्या है इसका एक प्रमाण यह है कि मन स्वयं जड़ व अन्धकार स्वरूप है। पश्चात्स्थित आत्माकी प्रभासे चैतन्यवत् प्रतीत होता है। जब इसको समझ जाओगे तब एक अखण्ड चैतन्यमें मन लय हो जायेगा; तब ही "अयमात्माब्रह्म" यह अनुभूति होगी।

यहां पर स्वामीजी बोले, "क्या तुझे नींद आ रही है।" तो सोजा। शिष्य स्वामीजीके पास ही बिछौनेपर सो गया। रातमें स्वामीजी अच्छी नींद न आनेके कारण बीच बीचमें उठकर बैठने लगे। शिष्यभी उठकर उनकी आवश्यकीय सेवा करने लगा। इस प्रकारसे रात बीत गई और रात्रिके शेषमें एक अद्भुत स्वप्न देखकर निद्राभंग होनेपर वह बड़े आनन्द से उठा। प्रातःकाल गङ्गास्नान कर जब शिष्य आया तो देखा कि स्वामीजी मठके नीचेके खण्डमें एक बेंच पर पूर्व ओर मुंह करे बैठे हैं। रात्रिके स्वप्नको स्मरण कर स्वामीजीके चरणकमलोंके पूजनेके लिये उसका मन चंचल हुआ और अपना अभिप्राय

प्रकाश कर उनकी अनुमति प्रार्थना की । उसकी बड़ी व्याकुलतासे स्वामीजीके सम्मत होने पर, शिष्यने कुछ धतूरेके फूल संग्रह किये और स्वामीजीके शरीरमें महा-शिवके अधिष्ठान की चिन्ता करके विधि पूर्वक उनकी पूजा की ।

पूजाके अन्तमें स्वामीजी शिष्यसे बोले, "तू ने तो पूजा करली" परन्तु बाबूराम (स्वामी प्रेमानन्दजी) आकर तुझे खा जायगा ! तू ने कैसे श्रीठाकुरजीके पुष्प-पात्रमें मेरे पांवको रखकर पूजा ? ये बातें हो ही रही थीं कि स्वामी प्रेमानन्दजी वहां आपहुंचे और स्वामीजी उनसे बोले, "देखो, आज इसने कैसा एक काण्ड रचा है !!! श्रीठाकुरजीके पूजा[illegible] [illegible] पुष्पचन्दन लाकर इस ने मेरी पूजा की ।" स्वामी प्रेमान[illegible] [illegible] [illegible] लगे और बोले, "बहुत अच्छा किया, तुम और ठाकुरजी क्या दो दो हो ?" यह बात सुनकर शिष्य निर्भय हो गया ।

शिष्य एक कट्टर हिन्दू था । अखाद्यका तो कहना ही क्या, किसीका छुआ हुआ द्रव्य तक भी नहीं खाता था इस लिये स्वामीजी उसको कभी कभी 'भट्टचाज्' कहकर पुकारते थे । प्रातःकालीन जलपानके समय

विलायती बिस्कुट इत्यादि खाते खाते स्वामीजी, स्वामी सदानन्दसे बोले, "जाओ, भट्चाजको तो पकड़लाओ।" आदेश पाकर शिष्यके वहां पहुंचतेही स्वामीजीने शिष्य को इन द्रव्यमेंसे थोड़ा थोड़ा उसको प्रसादरूपसे खानेको दिया। द्विधाहीन होकर शिष्यको वह सब ग्रहण करते देखकर स्वामीजी बोले, "आज तुमने क्या खाया जानते हो ? ये सब मुर्गीके अण्डेसे बनी हुई हैं।" इसके उत्तरमें उसने कहा, "जो भी हो मुझे जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं, आपके प्रसादरूप अमृतको खाकर अमर होगया।" यह सुनकर स्वामीजी बोले, "मैं आशीर्वाद देता हूं कि आजसे तुम्हारी जाति, वर्ण, अभिजात्य, पाप पुण्यादि अभिमान सदाके लिये दूर होजाएं।"

स्वामीजीकी उस दिनकी अयाचित अपार दयाको स्मरण कर शिष्य अनुमान करता है कि उसका मानव जन्म सार्थक होगया।

तीसरे पहर एकोन्टेन्टजनरल बाबू मन्मथनाथ भट्टाचार्यजी स्वामीजीके पास आये। अमेरिका जानेसे पहिले स्वामीजी मन्द्राजमें इन्हींके भवनमें अतिथि होकर बहुत

दिन रहे थे और तब ही से वह स्वामीजीकी बहुत श्रद्धा व भक्ति करते थे। भट्टाचार्य महाशय पाश्चात्य देश और भारतवर्षके सम्बन्धमें नाना प्रश्न करने लगे स्वामीजीने उन सब प्रश्नोंके उत्तर देकर और नाना प्रकारसे सत्कार करके कहा, "एक दिन तो यहां ठहर हो जाइये।" मन्मथ बाबू यह कह कर कि "और किसी दिन आकर ठहरूंगा।" विदा हुये और सीढ़ियोंसे नीचे उतरते समय किसी एक बन्धुसे कहने लगे. "हम यह मन्द्राजमें पहिले ही जान गये थे कि ये पृथ्वी पर एक महाकार्य बिना किये न रहेंगे। ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा मनुष्यमें नहीं पाई जाती।"

स्वामीजीने मन्मथके साथ साथ गंगाके किनारे तक जाकर उनको अभिवादन करके विदा किया और कुछ देर तक जंगलमें टहलकर काठेपर विश्राम करनेके लिये गये।

विशेष सूचना—इस पुस्तक का उत्तर काण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

परिशिष्ट ।

जिन कठिन संस्कृत पदों या श्लोकभागोंके अर्थ पुस्तकमें नहीं दिये गए हैं उनके अर्थ और जहांसे वे उद्धृत किये गये हैं यथा सम्भव वे स्थान भी दिये गये हैं ।

प्रथम वल्ली ।

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥

शाकुन्तला—१ म अंक २१

ओ भौंरे हम अभागे तो तत्त्वकी खोजहीमें मारे गये तेरा कार्य वास्तवमें बनगया, क्योंकि बार २ तू उसके अपाङ्गमें नाचते हुये नेत्रोंको छूता है, उसके कानपर गूंजता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो कुछ रहस्य कह रहा है, और हाथोंसे हटाये जानेपरभी उसके रतिसर्वस्व अधरका पान करता है ।

द्वितीय वल्ली।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

गीता, चतुर्थ अध्याय ३८

इस संसारमें ज्ञानके नांई पवित्र वस्तु और कोई नहीं है। निष्काम कर्म्मरूप यज्ञका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यगण समयमें स्वयं आत्मज्ञानको प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

मुण्डकोपनिषत्। २।२।८

उस परावर अर्थात् कारणरूपसे श्रेष्ठ व कार्य्यरूपसे अश्रेष्ठ ब्रह्मका दर्शन होने [illegible] अर्थात् अविद्यासे उद्भुत विषयवासना [illegible] संशय छिन्न होते हैं और साधन [illegible] मोक्षको रोकनेवाले सकाम कर्म्मोंके सब फल क्षीण होते हैं।

गुर्ज्जरी राग-एकताला।

नाम समेतं कृतसंकेतं वादयते मृदु वेणुम्।
बहुमनुते ननु ते तनुसंगतपवन चलितमपि रेणुम्॥

पतति पतत्रे विचलितपत्रे शंकति भवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥

जयदेवकृत गीत गोविन्द ।

वे तुम्हारे नामयुक्त संकेत द्वारा मधुर वंशी बजा रहे हैं। वे उस बालुकणको अपनेसे अधिक भाग्यवान् अनुमान कर रहे हैं जो तुम्हारे अंगको स्पर्शकर वायुद्वारा चलित होरहा है। छत्रपत्रका पतनशब्द सुनकर वा पक्षियोंके संचार शब्दसे "तुम आरहीहो" ऐसा अनुमान कर रहे हैं और शय्या रचनाकर तुम्हारा आगमन निरीक्षण कर रहे हैं।

चतुर्थ वल्ली ।

श्रीरामकृष्ण प्रणाम मन्त्र ।

स्थापकाय च धर्म्मस्य सर्वधर्म्मस्वरूपिणे ।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ॥ विवेकानन्द ।

जो रामकृष्ण धर्म्मके प्रतिष्ठाता हैं, जो सकलधर्म्मस्वरूप हैं, और जो सब अवतारोंमें श्रेष्ठ हैं उनको नमस्कार है।

पञ्चम वल्ली ।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

महिम्न स्तोत्र ।

वेदशास्त्र, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, तन्त्रशास्त्र और वैष्णवशास्त्र अपने अपने पथमें श्रेष्ठ व मंगलकारी हैं जैसे सरल वा कुटिल पथसे जानेपर भी नदियोंके जलका गम्यस्थान एक समुद्रही है वैसेही मनुष्योंके अपनी अपनी रुचिके अनुसार सरल वा कुटिल नानापथों पर चलनेपरभी तुमही उनके एक गम्यस्थान हो अर्थात् लोग चाहे जिस मतसे चाहे जिसकी उपासना करें वे तुम्हारीही उपासना करते हैं।

षष्ठ वल्ली ।

अस्मिन्नेव समये यज्ञसूत्रं परिधापयेत्—

रघुनन्दन–स्मृति ।

इसी समय यज्ञसूत्र (जनेऊ) पहिनना चाहिये।

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥

कठोपनिषत् । २।५

जैसा अन्ध द्वारा परिचालित अन्धगण नाना दिशा भ्रमण करनेपर भी अपने अभीप्सित स्थानको नहीं प्राप्त

करते हैं; वैसेही अविद्यामें स्थित मनुष्यगण जो अपने को बुद्धिमान कहकर अहंकार करते हैं और अपनेको पण्डित समझते हैं, वे कुटिलगति मूढ़लोग काम भोगसे मोहित होकर स्वर्ग नरकादि स्थानमें भ्रमण करते हैं परन्तु अपने अभीष्ट स्थानका दर्शन नहीं पाते।

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

ईशोपनिषद्। ७

जब शक्ति व शक्तिमान्के अभेदके कारण आत्माही सर्वभूत है ऐसी अनुभूति होती है, तब उस सर्वात्मदर्शीके लिये मोह ही क्या है और शोकही क्या है? अर्थात् कुछभी नहीं।

विज्ञातारमरे केन विजानीयात्—

बृहदारण्यक उपनिषत् २।४।१४

विज्ञाताको कौन जानेगा? जो स्वयं ज्ञाता है वह फिर ज्ञानका विषय नहीं होता, सर्वदा ज्ञाता (जानने वाला) ही रहता है।

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू-
स्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तः चक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥

कठोपनिषद्। ४।१

स्वयम्भू भगवान् ने इन्द्रियोंको वहिर्मुख कर रचना की है। इस लिये जीव केवल बाह्य विषयकोही देखते हैं।

सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ।

भर्तृहरि-वैराग्यशतक ।

संसार में सब ही भययुक्त हैं केवल वही भयशून्य है जिसका हृदयमें वैराग्य उदय हुआ है अर्थात् जो किसी वासनाके दास नहीं हैं।

लोकवत्तु लीला कैवल्यम्

वेदान्तसूत्र । १ । ३३

भगवान् राजाओं की नांई कोई प्रयोजन न रहने पर भी लीला करनेके लिये सृष्टि रचते हैं फिर प्रलय कालमें स्थिर होकर अवस्थान करते हैं।

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥

चैतन्यचरितामृत ।

वे ही सर्वदा हरिका कीर्तन करते हैं जो तृणके समान नम्र और वृक्षकी नाईं सहिष्णु होते हैं और सब ही लोगों का मान करते हैं।

ओं सूर्यचन्द्रमसौधातायथापूर्वमकल्पयत् ।

(वैदिक सन्ध्या मन्त्र)

ब्रह्माने पूर्व कल्पों की नाईं सूर्य्य और चन्द्र की सृष्टि की।

एकादश वल्ली।

न धनेन न चेज्यया त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः।

कैवल्योपनिषत्। १। २।

केवल मात्र त्यागके द्वारा ही अमृतत्वको प्राप्त करो। धन या यज्ञ के द्वारा नहीं।

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये
स एवाग्निसलिले सन्निविष्ठ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय॥

श्वेताश्वरोपनिषत्। ६। १५

वह परमात्मा इस भुवन के बीचमें हंस अर्थात् अविद्यादि बन्धन कारणके विनाशक है, वह ही सलिल अर्थात् सलिलवत् शुद्धान्तःकरण में स्थित अग्नि या अविद्याके जलाने वाला है। साधक उसको जानने पर ही मृत्यु के पार उतरते हैं। अमृतत्व का और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

काम्यानां कर्म्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्व्वकर्म्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥

गीता, अष्टादश अध्याय।

पण्डित लोग सकल काम्य कर्म्मोंके परित्यागको संन्यास और सब कर्म्मफलके त्यागको त्याग कहते हैं ।

इहासने शुष्यतु मे शरीरं
त्वगस्थि मांसं प्रलयञ्चयातु ।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभां
नैवासनात् कायमतश्चलिष्यते ।

ललित विस्तार

चाहे इस आसन पर मेरा शरीर सूख जाय या खाल, मांस व हड्डी नष्ट होजायें, अनेक कल्प दुर्लभ जो बोधि (पराज्ञान) है उसको विना प्राप्त किये मेरा शरीर तो इस आसनसे नहीं हटेगा ।

वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तः । इत्यादि ।

शङ्कराचार्य—कौपीन पञ्चकम् ।

वेशभूषाहीन कौपीनधारी वह पुरुष ही भाग्यवान है जिसकी वेदान्त वाक्य पर सदा प्रीति है, जो भिक्षा प्राप्त अन्नसे ही सन्तुष्ट होता है, और जो शोक विकार विहीन विशुद्ध चित्तसे सर्वदा रहता है ।

द्वादश वल्ली ।

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।

विवेकचूड़ामणि ।

एक अद्वय ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

चतुर्दश वल्ली ।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु ।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच ॥

कठोपनिषत् । ३ । ३ ।

हे नचिकेतः ! शरीरको रथ स्वरूप, जीवको रथी, बुद्धि को सारथि और मनको अश्व बांधने की रस्सी (बागडोर) जानना ।

ऊर्द्धं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥

कठोपनिषत् । ५ । ३

अंगुष्ठमात्र जो पुरुष हैं वेही प्राण वायुको ऊपरको और अपान वायुको नीचेको चलाते हैं । देवगण हृदयके मध्यस्थित उस वामनकी उपासना करते हैं ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्यधारानिशिता दुरत्यया
दुर्गम्पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

कठोपनिषत् । ३ । १४

हे साधुगण ! नाना प्रकारके विषय चिन्तासे निवृत्त हो; आलस्यको त्यागदो, महत्व्यक्तियोंसे वर प्राप्त करके भगवानको जाननेका उपाय करो । संसार क्षुर (उस्तरे) की

नाईं बड़ा तीक्ष्ण अर्थात् बहुत दुःख देने वाला है, बिना भगवत् ज्ञानके इसको छोड़ना सम्भव नहीं है । ज्ञानी लोग कहते हैं कि इस संसार बंधन निवर्त्तक ब्रह्मको बहुत क्लेशसे जान सकते हैं और बहुत यत्नसे प्राप्त कर सकते हैं ।

पञ्चदश वल्ली ।

निन्दन्तु नीति-निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टं ।
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।

भर्तृहरि—नीतिशतक २ । ८३ ।

नीति निपुण लोग चाहे भलाई या बुराई करें, लक्ष्मी चाहे आये, चाहे मनमौजी चली जाय, मृत्यु आज ही होजावे या एक युग पीछे बुद्धिमान्पुरुष न्यायपथ से पग नहीं हटते ।

सप्तदश वल्ली ।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात्तपसो वाप्य लिंगात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।।

मुण्डकोपनिषद् । ३ । २ । ४

जिसका आत्मनिष्ठाजनित वीर्य्य नहीं है वह इस आत्माको प्राप्त नहीं कर सकता। औदास्य व संन्यासविहीन ज्ञानके द्वारा भी उसको प्राप्त करना सम्भव नहीं है। परन्तु जो ज्ञानी इन सब उपायों (वीर्य्य, अप्रमाद, सन्यासयुक्त ज्ञान) से उसको पानेको यत्न करता है उसीका आत्मा ब्रह्मधाममें प्रवेश करता है।

अष्टादश वल्ली ।

अनावृत्तिः शब्दात् ।

वेदान्तसूत्र । ४ । २२

शब्द अर्थात् वेदसे यह प्रमाण होता है कि ब्रह्मदर्शन होनेसे पुनः संसारमें किसीको नहीं आना पड़ता है।

श्रीश्रीरामकृष्ण स्तोत्र ।

(१)

ओं—ह्रीं ऋतं त्वमचलो गुणजित् गुणेड्यः ।
न—क्तन्दिवं सकरुणं तव पादपद्मम् ।
मो—हङ्कषं बहुकृतं न भजे यतोऽहं ।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥ १ ॥

भ—क्तिर्भगश्च भजनं भवभेदकारि ।
ग—च्छन्तलं सुविपुलं गमनाय तत्त्वं ।

व— क्त्रोद्धृतन्तु हृदि मे न च भाति किंचित्।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥ २ ॥

ते— जस्तरन्ति तरसा त्वयि तृप्ततृष्णाः।
रा—गे कृते ऋतपथे त्वयि रामकृष्णे।
म —र्त्यामृतं तव पदं मरणोर्म्मिनाशं।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥ ३ ॥

कृ— त्यं करोति कलुषं कुहकान्तकारी।
ष्णा— न्तं सुविमलं तव नाम नाथ।
य— स्मादहं त्वशरणो जगदेकगम्य।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥ ४ ॥

स्वामी विवेकानन्द रचित।

(२)

आचण्डालाप्रतिहतरयो यस्य प्रेमप्रवाहः
लोकातीतोऽप्यहह न जहौ लोककल्याणमार्गम्।
त्रैलोक्येऽप्यप्रतिममहिमा जानकीप्राणबन्धः
भक्त्या ज्ञानं वृतवरवपुः सीतया यो हि रामः ॥ १ ॥

स्तब्धीकृत्य प्रलयकलितम्वाहवोत्थं महान्तं।
हित्वा रात्रिं प्रकृतिसहजामन्धतामिस्रमिश्राम्।

गीतं शान्तं मधुरपि यः सिंहनादं जगर्ज ।
सोऽयं जातः प्रथितपुरुषः रामकृष्णस्त्विदानीम् ॥ २ ॥

स्वामी विवेकानन्द रचित ।

स्वामी विवेकानन्द रचित गीत ।

(१)

सृष्टि ।

खम्माच—चौताला ।

एक, रूप-अरूप-नाम-वरण-अतीत-आगामी-काल-हीन
देशहीन सर्वहीन नेति नेति विराम यथाय ॥
तथा हते वहे कारण धारा, धरिये वासना वेश उजारा,
गरजि गरजि उठे तार वारि, अहमहमिति सर्वक्षण ॥
से अपार इच्छा सागर माझे, अयुत अनन्त तरंग राजे,
कतई रूप कतई शकति, कत गति स्थिति के करे गणन ॥
कोटी चन्द्र कोटी तपन, लभिये सेई सागरे जनम,
महाघोर रोले छाइल गगन, करि दशदिक ज्योतिःमगन ॥
ताहे वसे कत जड़जीव प्राणी, सुख दुःख जरा जनम मरण
सेई सूर्य्य तारि किरण, येई सूर्य्य सेई किरण ॥

बंगला शब्दों का अर्थ ।

यथाय-जहां	से—उस
तथाहते-वहांसे	कतई—कितनाही
धरिये-धरकर	के करे—कौन कर सकता
तार-उसका	छाईल—छागया

तारि—उसका ही

---

(२)

श्रीकृष्ण संगीत ।

मुलतानी—धीमा तिताला ।

मुझे वारि वनवारी सैंया जाने दे ।
जाने देरे सैंया जाने दे (आज़ु भला)
मेरा वनवारी, वांदी तुम्हारी ।
छोड़ चतुराई सैंया जाने दे, आज़ु भला ॥
(मोरे सैंया) ॥
यमुनाकी नीरे, भरों गागरिया
जोरे कहत सैंया जाने दे ॥

विश्वनाथाष्टकम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥

गंगातरंगरमणीयजटाकलापम्
　　गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम् ।
नारायणप्रियमनंगमदापहारम्
　　वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ १ ॥

वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपम्
　　वागीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम् ।
वामेनविग्रहवरेणकलत्रवंतम्,
　　वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ २ ॥

भूताधिपंभुजगभूषणभूषितांगम्
　　व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ।
पाशांकुशाभयवरप्रदशूलपाणिम्
　　वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ ३ ॥

शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानम्
　　भालेक्षणानलशोषितपंचबाणम् ।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरम्
　　वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ ४ ॥

पंचाननं दुरितमत्तमतंगजानाम्
नागांतकं दनुजपुंगवपन्नगानाम्।
दावानलं मरण-शोकजरान्टवीनाम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथं॥ ५॥

तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीय-
मानंदकंदमपराजितमप्रमेयम्।
नागात्मकंसकल निष्कलमात्मरूपम्,
वाराणसीपुरपति भज विश्वनाथम्॥ ६॥

आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां
पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ।
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥ ८॥

वाराणसी-पुरपतेः स्तवनं शिवस्य
व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिम्
संप्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम्॥ ९॥

विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेनसहमोदते॥ १०॥

इति श्रीव्यासकृतं विश्वनाथाष्टकं सपूर्णम्।

शुद्धाशुद्धपत्र ।

मात्रा व अक्षर टूटनेके कारण भी अशुद्धियां रहगई हैं। यथा सम्भव उनके शोधनकरनेका प्रयत्न कियागया है सज्जन पाठक पाठिकाओंसे निवेदन है कि वे कृपया इस त्रुटिकोक्षमा करें।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२	वर्णन	वर्णन
,,	१६	स्वाम	स्वामी
११	१४	जाव	जावे
१३	१६	एकान्तम	एकान्त में
,,	,,	आपस	आपसे
१४	१६	उनस	उनसे
१६	५	मनुष्यजातिके,	मनुष्यजातिकी
१७	१	आर	और
१७	१९	लड़	लड़ाई
२१	१६	कथापकथन	कथोपकथन
२४	९	आचर	आचार
२८	३	अंरेज़	अंगरेज़
३४	३	गभीर	गम्भीर
४३	९	ध्वनी	ध्वनि
,,	१०	गुंज	गूंज

४४	५	मदंग	मृदंग
४५	१०	गय	गये
४६	१६	उन	उनके
५६	१८	कर	करे
६०	११	नेही	नहीं
६३	१३	ज	जो
६४	१४	प्राचीन कालम,	प्राचीनकालमें
६६	१४	उसक	उसके
,,	१६	पक	एक
६७	१	वठा	बैठा
७२	५	शास्न	शास्त्र
७५	१	विवणर	विवरण
७५	६	उन्नती	उन्नति
६४	१६	बाहार	बाहर
६८	१	सघ	संघ
६६	७	धर्मभार्थोका	धर्माचार्योंका
१३५	३	एकका	एकको
,,	१६	शिरोधाय	शिरोधार्य
१४३	२	आतही	आतेही
१४३	१५	हिन्दुधर्म	हिन्दूधर्म
१४८	१३	हीं	नहीं ?
१५०	११	जगानेका	जगानेके

१५५	७	घर वालेके	घर वालेके
१६१	५	जादु	जादू
१६२	१	दां	दो
"	४	हांतो	होती
१६३	१६	प्रस्तत	प्रस्तुत
१६६	८	०	करनेसे
"	१५	विरतार	विस्तार
१६८	१	होनके	होनेके
"	१५	वेशों	वेश
१७०	१७	कालिजी	कालिज
१७३	६	ने	०
१७६	१६	सा	सोये
१७७	४	कभी हो	कभी
१८०	५०	रही	रह ही
"	"	अल्याधिक	अल्पाधिक
१८१	१२	चेतन्यदेवको	चैतन्यदेवके
"	१३	सम्प्रदाये	सम्प्रदाय
१८२	६	पृथ्थी	पृथिवी
१८५	१०	खर्व	सर्व
१८७	२	दीवानपन	दीवानेपन
१८७	५	बकरीका	बकरीके
१९०	८	कपटता	कपट

१६०	१०	मट्ट	मठ
१६०	११	टीकसे	ठीकसे
१६३	११	दशन	दर्शन
१६४	५	जो	तो
१६५	१	वे	वह
१६५	२	आते थे	आता था
१६७	११	कपटता	कपट
२०१	१५	आंतथो	अतिथि
२०३	१	ज़ोर भवानी को	ज़ोर भवानीके
२०८	५	छोंड़ी	छेड़ी
२०८	७	क्यों	क्या
२११	७	अमी	अभी
२१४	४	'उद्बोघन'	उद्बोधन
२१४	६	भावका	भावोंको
२१४	८	दूर्वलता	दुर्वलता
२१४	१७	अनुभय	अनुभव
२१६	४	का	के
२१६	६	परिणिति	परिणत
२१६	११	नहीं	नहि
२२२	१	लोगोंका	लोगोंको
"	६	भूतम	भूतमें
२२२	१०	सर्वंग्रासिनी	सर्व ग्रासिनी.

शुद्धाशुद्धपत्र।

२२३	३	पुरुषोंका	पुरुषोंकी
२२४	११	किजीये	कीजिये
२२५	१४	अर्थस्था	अवस्था
२२७	८	ता	तो
२२६	१	वहा	वही
२२६	५	का	की
२३०	५	विरोध	निरोध
२३०	११	लिय	लिये
२३१	१४	निन्द्रा	निद्रा
२३६	१७	वेणम्	वेणुम्
२३८	१६	अभीप्तित	अभीप्सित
२४०	१६	कल्पचत्	कल्पयत्
२४२	२	कह	कहते

रामप्रसाद जैनी के प्रबन्ध से " ग्लोबप्रिन्टिंगवर्क्स "
मेरठ में छपकर प्रकाशित हुई।